अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

1.प्रो0 अरविंद के जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.प्रो0 बी.मोहन कुमार, जी.बी.पंत कृषि व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ0 रेणू प्रकाश, समाजशास्त्र विभाग, एस0एस0जी परिसर कुमांऊ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा	1
रजनी, समाजशास्त्र विभाग, पंजाब	2,7,8
तीर्थजनी पाण्डा, दिल्ली	3,4,5,6
Translation of Units: Punit Chaturvedi	**2,3,4,5,6,7,8**

संपादन

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विष्वविद्यालय, हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020

प्रकाशन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MASO-606

नगरीय समाजशास्त्र II-
Urban Sociology-II

Block I	**Urban Social Structure and Approaches to Urban Society**	
Unit 1:	Urban Family, Urban Social Stratification and Occupational Divisions नगरीय परिवार, नगरीय सामाजिक स्तरीकरण एवं व्यवसायिक विभाजन	पृष्ठ–1–28
Unit 2:	Urban Life, Rural-Urban Continuum नगरीय जीवन, ग्रामीण नगरीय सततता	पृष्ठ–29–38
Unit 3:	Theories of Urbanism: Ecological-Classical Neo-Classical and Socio-Cultural नगरीयकरण के सिद्धांत नगरीयकरण	पृष्ठ–39–51
Unit 4:	Marxist Approach to City मार्क्सवाद और नगरीय प्रारूप	पृष्ठ–52–62
Block II	**Urban Governance and Barriers of Urbanization**	
Unit 5:	Meaning and Principles of Urban Governance, Urban Governance in India नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत, भारत में नगरीय शासन	पृष्ठ–63–76
Unit 6:	Nature of Urban Policies, Urban Development Programme नगरीय नीतियों की प्रकृति, नगरीय विकास कार्यक्रम	पृष्ठ–77–91
Unit 7:	Challenges to Urban Governance: Urban Violence नगरीय शासन की चुनौतियां: नगरीय हिंसा	पृष्ठ–92–102
Unit 8:	Poverty, Power, Crime and Slums निर्धनता, शक्ति, अपराध और बस्तियां	पृष्ठ–103–117

इकाई– 1

नगरीय परिवार, नगरीय सामाजिक स्तरीकरण एवं व्यवसायिक विभाजन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 नगरीय परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

1.3 नगरीय परिवार की विशेषताएँ

1.4 नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव

1.5 नगरीय परिवार में विघटन के कारण

1.6 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

1.7 सामाजिक स्तरीकरण के आधार

1.8 सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूप

1.9 नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधार

1.10 भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण

1.11 व्यवसायिक विभाजन का अर्थ एवं परिभाषा

1.12 व्यवसायिक विभाजन के प्रकार

1.13 व्यवसायिक विभाजन के परिणाम

1.14 व्यवसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकीकरण में योगदान

1.15 सारांश

1.16 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

1.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

1. नगरीय परिवार के स्वरूप, विशेषतायें तथा आधुनिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना।

2. वर्तमान समय में नगरीय परिवार के विघटन के लिए उत्तरदायी मुख्य कारणों की व्याख्या।
3. सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ तथा परिभाषाओं को स्पष्ट करना।
4. सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख आधार क्या है? तथा भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण की स्पष्ट रूपरेखा को स्पष्ट करना।
5. व्यवसायिक विभाजन के अर्थ तथा परिभाषाओं को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकार तथा परिणामों की व्याख्या।
6. नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण में व्यावसायिक विभाजन के योगदान को स्पष्ट करना।

1.1 प्रस्तावना

परिवार किसी भी समाज की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई मानी जाती है। औद्यौगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया ने समाज में अनेकों प्रकार का परिवर्तन किया है, जिससे परिवार भी अछूता नहीं है। रोजगार के सुअवसर, बेकारी तथा उच्च जीवन की लालसा ने ग्रामीण समाज से पलायन को तीव्र गति से बढ़ावा दिया है। जिसने परम्परागत परिवारों के स्वरूपों को परिवर्तित कर दिया है। जिसने संयुक्त परिवार को विघटित करके एकाकी परिवार के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ऐसा माना जाता है कि समाज में कोई भी परिवर्तन दो प्रकार की स्थितियों को जन्म देता है – सकारात्मक तथा नकारात्मक। जहां एक ओर नगरीय परिवार ने परम्परागत स्वरूप को परिवर्तित किया है। वहीं वैचारिक स्वतंत्रता के साथ–साथ आर्थिक सुदृढ़ता भी प्रदान की है तथा महिलाओं को भी एक बराबरी का स्थान प्रदान किया है।

भारत में सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति व्यवस्था को माना जाता है। जिसमें प्रायः सामाजिक गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाये तो सामाजीकरण विभेदीकरण की प्रक्रिया पर आधारित होते हैं। जिसमें व्यक्ति विभिन्न वर्गों में आधारित होता है तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से ऊँचे एवं नीचे पदों पर आधारित होता है। कहने का आशय यह है कि नगरीय समुदाय में व्यक्ति अपनी कार्यकुशलता एवं योग्यता के आधार पर किसी भी वर्ग को प्राप्त कर सकता है। जिसमें जाति को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता। यही कारण है कि नगरीय समुदाय में भी व्यवसायिक विभाजन में जातिगत व्यवस्था का कोई स्थान नहीं होता।

1.2 नगरीय परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

जैसा कि हम सब जानते हैं कि परिवार एक मौलिक एवं सार्वभौमिक इकाई होती है। ऐसा माना जाता है कि परिवार सामाजिक व्यवस्था का एक प्रमुख आधार है जो व्यक्ति का सामाजीकरण एवं मानवीयकरण करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री चार्ल्स कूले परिवार को एक प्रमुख प्राथमिक समूह माना है। प्रमुख समाजशास्त्री यंग और मैक के अनुसार– ''परिवार सबसे पुराना एवं मौलिक मानव समूह है। पारिवारिक ढ़ांचे का विशिष्ट स्वरूप एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न हो सकता है। पर यह सब जगह विद्यमान अवश्य रहता है। परिवार के दो प्रमुख कार्य होते हैं। 1–बच्चों का पालन पोषण करना और 2–उन्हें समाज की संस्कृति से परिचित कराना अर्थात् उनका समाजीकरण करना। अतः परिवार वह सामाजिक संस्था है। जिसका प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी स्थिति में सदस्य अवश्य होता है। और आश्रित भी होता है। यह मानव जाति के आत्म संरक्षण, वंशवर्धन तथा जातीय जीवन की निरंतरता को बनाए रखने का प्रमुख साधन है।''[1]

वास्तव में परिवार आंग्ल भाषा के फैमिली (family) का हिन्दी रूपांतरण है जो फैमुलस (लैटिन भाषा) से बना है। फैमुलस शब्द का अर्थ सर्वेंट (servent) होता है अर्थात् परिवार के प्रत्येक सदस्यों की पारस्परिक निर्भरता एवं सेवा भाव अलग–अलग समाजशास्त्रियों ने परिवार की अलग–अलग परिभाषाएं दी हैं जो निम्नांकित हैं।[2]

मैकाइवर एवं पेज– ''परिवार निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं पालन पोषण की व्यवस्था करता है।

डी0 एन0 मजूमदार– ''परिवार व्यक्तियों का वह समूह है जो एक छत के नीचे रहते हैं। मूल और रक्त सम्बन्धी सूचकों से सम्बन्धित होते हैं तथा स्थान, रूचि, कृतज्ञता की अन्योन्याश्रितता के आधार पर संबंध की जागरूकता रखते हैं।

मर्डोक– ''परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जनन है।

आर्गबर्न एवं निमकॉफ– ''परिवार, पति और पत्नी की संतान रहित या संतान सहित या केवल पुरूष या स्त्री की बच्चों सहित कम या अधिक स्थायी समिति है।

इस सम्बन्ध में डॉ0 रंजना अग्रवाल का मानना है कि हम परिवार को जैविकीय संबंधों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जिसमें माता–पिता एवं बच्चे होते हैं तथा जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन–संतुष्टि, प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षा की सुविधाएं जुटाना है।[3]

किसी भी समाज की सामाजिक संरचना को यदि देखें तो सम्पूर्ण समाज दो भागों में विभाजित है। ग्रामीण तथा नगरीय, ग्रामीण विशेषताओं वाले समाज को ग्रामीण समुदाय तथा नगरीय विशेषताओं वाले समाज को नगरीय समुदाय कहा जाता है। परिवार समाज की प्राथमिक और मौलिक इकाई मानी जाती है जो किसी भी समाज की आधारभूत इकाई होने के साथ अपना एक महत्वपूर्ण स्थान लिए हुए है। परिवार की संरचना तथा स्वरूप समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली एक संस्था होती है। नगरीय परिवार तथा ग्रामीण परिवार में यदि अन्तर स्पष्ट करें तो दोनों संस्थाओं में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। वास्तव में नगर आधुनिकीकरण तथा औद्योगिकीरण की देन माना जाता है। जिसने ग्रामीण समुदाय के स्वरूप तथा संरचना में अनेकों परिवर्तन कर दिए हैं। वास्तव में नगरीय परिवार परम्परागत परिवार से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस सन्दर्भ में प्रमुख समाजशास्त्री आर्गबर्न का मानना है कि ''सामाजिक संस्था के रूप में अन्य संस्थाओं की तरह परिवार में भी परिवर्तन हो रहा है। ये परिवर्तन विभिन्न देशों में औद्योगीकरण, नगरीकरण और पृथकता की मात्रा के अनुसार भिन्न–भिन्न है।''

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। परन्तु नगरीय परिवार ग्रामीण परिवारों से भिन्न होते हैं, क्योंकि उनकी संस्कृति एवं सामाजिक पृष्ठभूमि अलग होती है। प्रत्येक नगर और महानगर की संरचना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है और इसका प्रभाव व्यक्ति के स्तर, स्थिति और भूमिकाओं पर पड़ता है। प्राविधिक तथा आर्थिक परिवर्तन से समाज में परिवर्तन आया है। यह अन्तर परिवार में भी देखने को मिलता है।

अनेक समाजशास्त्रीयों ने नगरीय परिवार की विशेषताओं के आधार पर नगरीय परिवार की अनेक परिभाषाओं की व्याख्या की है जो निम्न है–

इलिएट तथा मेरिल– ''परिवार को एक प्राणीशास्त्रीय इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जो पति–पत्नी और उसके बच्चों द्वारा निर्मित होती है।''

आगबर्न और निमकॉफ– ''परिवार पति–पत्नी का एक न्यूनाधिक स्थायी संगठन है जिसमें बच्चे हो या न हो, अथवा पुरूष और स्त्री अकेले ही निवास करते हैं।

बिसेंज और बीसेज– ''परिवार को एक स्त्री, उसके बच्चे तथा उनकी देखभाल के लिए एक आदमी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

परिवार में होने वाले परिवर्तन के संदर्भ में आगबर्न का मानना है कि सामाजिक संस्था के रूप में अन्य संस्थाओं की भांति परिवार में भी परिवर्तन हो रहा है। ये परिवर्तन विभिन्न देशों में औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पृथकता की मात्रा के अनुसार भिन्न–भिन्न हैं। नगर से अभिप्राय ऐसी केन्द्रीयकृत बस्तियों के समूह से है जिसमें सुव्यवस्थित केद्रीय व्यापार क्षेत्र, प्रशासनिक इकाई, आवागमन के विकसित साधन तथा अन्य नगरीय सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। परिवार के नगरीय स्वरूप का उदय अनेक परिवर्तनों के कारण हुआ है।[5]

इसी प्रकार राल्फ टर्नर का मानना है कि परिवार में प्रभुसत्ता और सम्पत्ति का अधिकार, पुरूषों के हाथ में रहता था। अतः परिवार का स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त होता था। धीरे–धीरे औद्योगिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप अनेक ग्रामवासी रोजगार की तलाश में नगरों की ओर आने लगे, जिससे नगरीकरण में वृद्धि होने लगी। परन्तु उनका मूल परिवार गांव में ही रहता था। अतः परिवार का स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त होता था। अतः ग्रामीण संयुक्त परिवार, एकल परिवार में परिवर्तन होने लगे। नगरीय परिवार मुख्य रूप लघु आकार का एकल परिवार है। जिसके कारण ऐसे परिवारों में संयुक्त परिवार, एकल परिवारों में परिवर्तित होने लगे। जिसके कारण ऐसे परिवारों में संयुक्त परिवार की अनेक परंपरागत विशेषताओं का अभाव पाया जाने लगा।[6]

नेल्स एंडरसन के अनुसार– ''जब घर कार्य का मुख्य स्थल था तो यह आशा की जाती थी कि जीवन कार्य में प्रवेश के लिए जो प्रशिक्षण आवश्यक था। उसे परिवार प्रदान करता था। फिर भी बच्चों को कारखाने के कामगार के रूप में अथवा किसी कार्यालय में एकाउंटेंट के रूप में प्रशिक्षित करना परिवार के लिए सम्भव नहीं था। अब शिक्षा और प्रशिक्षण परिवार से बाहर चले गये हैं। लेकिन बच्चों का सामाजीकरण का पक्ष अब भी परिवार में ही निहित है।''[7]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नगरीय परिवार नगरीय विशेषताओं से युक्त तथा ग्रामीण समुदाय के परिवार से भिन्न एक ऐसा परिवार है जो समाज में सामाजीकरण एवं मानवीयकरण की भूमिका का निर्वह्न करता है। वास्तव में नगरीय परिवार पूर्णतः एकाकी परिवार होते हैं। जिसमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित होते **हैं।**

1.3 नगरीय परिवार की विशेषताएँ

नगरीय परिवार की विशेषताओं की निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **केन्द्रक परिवार–** नगरीय समाज में प्रायः केन्द्रक या एकल परिवार की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। एकल परिवार की वृद्धि का एक प्रमुख कारण नगरों में निवास की कमी को माना जा सकता है। सीमित आय में व्यक्ति बड़े मकान का किराया वहन नहीं कर पाता। अतः व्यक्ति केवल अपने परिवार जिसमें उसकी पत्नी तथा बच्चे होते हैं गांव से नगर में साथ लेकर आता है। जिन्हें वह छोटे व सीमित स्थान पर रखा सकता है। यही कारण है कि धीरे–धीरे हमारे परम्परागत संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं।
2. **जन्मदर की कमी**– नगरीय समाज या नगरीय परिवार की एक प्रमुख विशेषता जन्मदर की कमी होना है। नगरों में जीवन–यापन करना ग्रामीण समाज की तुलना में अधिक खर्चीला होता है। अतः परिवार को सीमित करने के लिए बच्चों का जन्मदर प्रायः कम होता है।
3. **व्यक्तिवादिता**– नगरीय परिवार में व्यक्ति पूर्णतः व्यक्तिवादी होता है। वास्तव में नगरों में व्यक्तियों के मध्य प्राथमिक सम्बन्ध न होकर द्वितीयक सम्बन्धों पर आधारित होता है। जिसमें व्यक्ति पूर्णतया स्वार्थ सम्बन्धों को ज्यादा महत्व देता है। अपने स्वार्थ और महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति किसी भी माध्यम को अपना सकता है।
4. **अस्थिरता**– नगरीय परिवार प्रायः अस्थिर होते हैं। आर्थिक सुदृढ़ता के लिए माता–पिता दोनों कार्यरत् होते हैं। ऐसी स्थिति में पूरा परिवार एक साथ नहीं रह पाते और माता और पिता दोनों अलग–अलग स्थानों पर नौकरी करते हैं। जिससे बच्चे भी कभी माता के पास और कभी पिता के पास रहते हैं। इस सम्बन्ध में नेल्स एंडरसन का मानना है कि कुछ अपवादों को छोड़कर आधुनिक परिवार एक पीढी तक की व्यवस्था है। यह व्यवस्था बच्चों के नाबालिग रहने तक रहती है तथा बच्चों के विवाह होने एवं बाहर जाने पर समाप्त हो जाती है। जिन परिवारों के पास संपत्ति है। वे कुछ लम्बे समय तक बने रहते हैं पहले परिवार की शक्ति सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती थी और बच्चों को वरदान माना जाता था। नगरीय जीवन शैली वाले समुदायों में इस सोच में बदलाव आ रहा है।[8]
5. **महिलाओं की उच्च स्थिति–** नगरीय समाज में प्रायः महिलाओं की स्थिति उच्च होती है। जहां पर महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तरह समान होती है। महिलाओं की आश्रितता पुरूषों पर अब घट गयी है। नगरीय जीवन में महिलाओं की शिक्षा, नौकरी तथा व्यवसाय या व्यापार करने की स्वतंत्रता प्राप्त होने लगी है। अर्थोपार्जन के क्षेत्र में तो महिलाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है तथा प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरूषों के समान कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही है। परिवार की सम्पत्ति में भी महिलाओं के अधिकार समान रूप से बढ़े हैं। इस संबंध में एन्डरसन के मतों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

   1–लड़कियां अपने माता–पिता को छोड़कर रोजगार के उद्देश्य से बाहर आती है। उनका बाहर रहना किसी प्रकार का संकट उत्पन्न नहीं करती।

   2– पहले की तरह, विवाह अब पारिवारिक कार्य न होकर व्यक्तिगत कार्य हो गये है। इसका अर्थ है कि लड़के व लड़कियों को अपने जीवन साथी के चुनाव की काफी स्वतंत्रता है। यद्यपि उच्चवर्गीय परिवार में रिश्तेदारों की ओर से नियंत्रण की मनोवृत्ति पायी जाती है।

3– लड़कियों तथा लड़कों को अपनी शिक्षा और व्यवसाय के चुनाव के बारे में निर्णय करने की अधिक स्वतंत्रता है।

6. **परम्परागत व्यवसाय का पतन–** नगरीय परिवार में धीरे–धीरे परम्परागत व्यवस्था का पतन हो रहा है। शिक्षा के कारण व्यक्ति स्वयं परम्परागत व्यवसाय को अपनाना नहीं चाहता है। नई पीढ़ी किसी ऑफिस या आर्थिक रूप से सुदृढ़ व्यवसाय में कार्य करना अधिक पसंद करते हैं। वास्तव में नगरीय क्षेत्र में अब परम्परागत व्यवसाय की शिक्षा का भी अभाव है। इस सम्बन्ध में नेल्स एन्डरसन का मत है कि जब घर कार्य का मुख्य स्थल था, तो यह आशा की जाती थी कि जीवन कार्य में प्रवेश के लिए जो प्रशिक्षण आवश्यक था, उसे परिवार प्रदान करता था। फिर भी बच्चों को कारखाने में कामगार के रूप में अथवा किसी कार्यालय में एकाउंटेंट के रूप में प्रशिक्षित करना परिवार के लिए सम्भव नहीं था। अब शिक्षा और प्रशिक्षण परिवार से बाहर चले गये हैं। लेकिन बच्चों का सामाजीकरण का पक्ष अब भी परिवार में ही निहित है।
7. **धार्मिकता और आध्यात्मिकता में कमी–** नगरों में विभिन्न धर्म, जाति के लोग निवास करते हैं औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने लोगों में वैचारिक स्वतंत्रता का विकास किया है। साथ–साथ काम करने के कारण विभिन्न धर्म, जाति और समुदाय के व्यक्ति अब धार्मिक विचारों, संस्कृति, परम्परावादी विचारों तथा रूढ़िवादी विचारों का त्याग कर रहे हैं कहने का तात्पर्य यह है कि प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित हो जाने के कारण व्यक्ति अब धार्मिकता और आध्यात्मिक विचारों को कम महत्व देने लगे हैं।
8. **वैवाहिक सम्बन्धों में अस्थिरता**– जैसा कि हम सब जानते हैं कि नगरीय समाज में आर्थिक सुदृढ़ता के लिए महिला और पुरूष दोनों का कार्यरत् होना आवश्यक हो गया है। जिससे जीवन–यापन सुचारू रूप से चल सके। आत्मनिर्भर एवं धनोपार्जन के कारण महिलायें पुरूष को सहयोगी एवं समकक्ष हो जाती है। एक अलग व्यक्तित्व होने के कारण अपना भला–बुरा अच्छे से समझने लगी है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था होने के कारण पुरूषों की सोच में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता है। अतः दोनों में वैचारिक मतदभेद होने के कारण नगरीय समाज में तलाक या विवाह–विच्छेद के मामलों में तीव्रता से बढ़ोत्तरी हो रही है।
9. **परिवार एवं नातेदारी के महत्व में कमी**– प्राचीन काल में परिवार व्यक्ति के सामाजीकरण एवं मानवीयकरण में अपनी विशेष भूमिका का निर्वह्न करता था। साथ ही रिश्तेदारी तथा नातेदारी को विशेष महत्व दिया जाता था। किन्तु नगरीय समाज में इन दोनों का महत्व धीरे–धीरे कम होने लगा है। समय की कमी तथा महानगरों में आवासीय कमी के कारण व्यक्ति अतिथि सत्कार जैसी बातों को कोई विशेष महत्व नहीं देता है।
10. **शिक्षा का विशेष महत्व**– ग्रामीण समाज की तुलना में नगरीय समाज में शिक्षा का अपना विशेष महत्व है। नगरीय परिवार में बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे बच्चे उच्च पदों को प्राप्त कर सके। संसाधनों की कमी के बावजूद भी नगरीय परिवार में प्रत्येक व्यक्ति अच्छी से अच्छी शिक्षा अपने बच्चों को देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है।
11. **अनुशासन का अभाव**– ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली होने के कारण परिवार के बुजुर्ग सदस्यों या मुखिया का परिवार के प्रत्येक सदस्य पर अनुशासन एवं नियंत्रण रहता था। किन्तु नगरीय परिवार में एकल परिवारों की अधिकता होने के कारण यह अनुशासन एवं नियंत्रण की प्रक्रिया पूर्णतः समाप्त हो गयी है। माता–पिता दोनों के कार्यरत् होने की दशा में बच्चे

स्वतंत्र हो जाते हैं जिसके कई दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं तथा नगरों में कई अपराधिक घपटनायें, नशाखोरी, वैश्यावृत्ति एवं जुआखोरी इसी अनुशासन एवं नियंत्रण के अभाव में बढ़ रही है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर नगरीय विशेषताओं को भली प्रकार से समझा जा सकता है। हालांकि ये सभी विशेषतायें स्थायी नहीं होती है। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप नगरीय विशेषताओं में भी धीरे–धीरे परिवर्तन आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में एंडरसन का मानना है कि ''परिवर्तन की यह दिशा ग्रामीण पीरवार से नगरीय परिवार की ओर तथा नगरीय परिवार से उन्मुक्त परिवार की ओर है। नगरीय परिवार का यह परिवर्तन हितकर हो या नहीं, परन्तु उस परिवर्तन को सभी को स्वीकार करना होगा।

1.4 नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रभाव

आधुनिक समाज में नगरीय परिवार की संरचना में धीरे–धीरे कई परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं आधुनिक प्रवृत्तियों के नगरीय जीवन में प्रभाव को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. संयुक्त परिवार प्रणाली में बच्चों के पालन–पोषण सम्बंधी अधिकांश कार्य परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा किये जाते थे, किन्तु आधुनिक प्रवृत्तियों के कारण पति और पत्नी दोनों के कार्यरत् होने की दिशा में यह कार्य अन्य संस्थाओं एवं समितियों द्वारा किया जाने लगा है। जैसे– शिशुशालाओं, किडंरकार्डन स्कूल आदि।
2. आधुनिक प्रवृत्तियों के कारण प्राचीन पारिवारिक मनोरंजन के साधनों में कमी आने लगी है। प्राचीन समय में सिनेमा, रेडियो तथा बच्चों के द्वारा विभिन्न प्रकार के खेलकूद मनोरंजन के प्रमुख साधन माने जाते थे। परन्तु नगरीय परिवार में टी0वी0 वीडियो गेम, केबल चैनल आदि ने मनोरंजनात्मक गतिविधियां को घर में कैद करके रख दिया है। साथ ही खेल संबंधी सामूहिकता को भी खत्म कर दिया है।
3. आधुनिक प्रवृत्तियों ने नगरीय परिवार में यौन उन्मुक्तता को बढ़ावा दिया है। नगरीय परिवार में वैवाहिक और यौन संबंध के प्राचीन नियम धीरे–धीरे कम पड़ने लगी हैं वैश्यावृत्ति तथा कार्लगर्ल का व्यवसाय नगरीय समाज में तीव्र गति से बढ़ रहा है। जो पारिवारिक तनाव का एक प्रमुख कारण बन गया है। सदरलैंड और वुडवर्ड का मानना है कि यौन नियमों में परिवर्तन से परिवार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।''[9]
4. नगरीय समाज ने स्त्री और पुरुषों के समानता के स्तर पर ला दिया। नगरीय परिवार में एक महिला की प्रस्थिति पुरुषों के समकक्ष मानी जाती है। प्रत्येक क्षेत्र में महिला को समान अधिकार प्राप्त हो गये हैं प्राचीन समय के समान महिला एक श्रमिक या दासी न होकर पुरुष की सहयोगी बन गयी हैं। जो पुरूषों के समान कन्धे से कन्धा मिलाकर उसे प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान देने में भी पीछे नहीं रहती है। प्रमुख समाजशास्त्री मोरेर का इस सम्बन्ध में कहना है कि ''अनेक परिवारों में पति अब परिवार का अध्यक्ष नहीं रह गया है। यद्यपि यह तथ्य है कि वह अब भी पारिवारिक नाम और धार्मिक नाम प्रदान करता है जिसको उसकी पत्नी अधिक औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करती है। पत्नी परिवार में अपने को यदि पति से श्रेष्ठ नहीं तो बराबर अवश्य पाती है। वह परिवार समूह के भाग्य पर

सहानुभूतियुक्त परन्तु दृढ़ हाथ से शासन करती है। वह अब अन्य दिनों के समान श्रमिक अथवा दासी नहीं रही।[10]

5. आधुनिक प्रवृत्तियों ने नगरीय परिवार के बच्चों को परिवार का मुख्य केन्द्र बिन्दु बना दिया है। परिवार द्वारा समस्त कार्य बच्चों को ध्यान में रखकर तथा बच्चों की इच्छाओं पर आधारित हो गये हैं डांट फटकार तथा शारीरिक दण्ड अब प्राचीन दकियानूसी विचारधारा माना जाने लगा है। इस सम्बन्ध में अर्नेस्ट मौरर का मानना है कि ''वे वास्तव में दृश्य पर छा जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। उनकी इच्छायें परिवार की नीति–निर्धारित करती है। इस प्रकार बच्चों पर केन्द्रित परिवार की ओर प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। जिसमें बालक का कही मुख्य स्थान होता है।''[11]

नगरीय परिवार में आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रमुख प्रभाव परिवार का सीमित या छोटा होने पर पड़ा है। गर्भ निरोधक साधनों एवं औषधियों के जरिये हम दो और हमारे दो के प्रचलन से जन्म दर धीरे–धीरे कम होने लगी है। जिससे नगरीय परिवार छोटे होते जा रहे हैं फोल्सम के शब्दों में दो बालकों का परिवार वर्तमान व्यापक सामाजिक मानदण्ड अथवा आदर्श है।''[12]

अस्थिरता की बढ़ोत्तरी–प्राचीन काल से ही परिवार समाज की प्रथम एवं मौलिक इकाई मानी जाती थी, किन्तु नगरीय परिवारों में विवाह मात्र एक सामाजिक समझौता माने जाने लगा है। जिससे सदस्यों के मध्य मामूली विवाद में ही वैवाहिक सम्बन्ध टूटने लगते हैं, जिससे परिवार बिखर जाते हैं। ''आधुनिक परिवार प्राचीन और मध्यकालीन परिवार की अपेक्षा कही अधिक दुर्बल और अस्थिर है।''

1.5 नगरीय परिवार में विघटन के कारण

आधुनिक परिवार प्रणाली की विवेचना से स्पष्ट होता है कि कई कारण ऐसे हैं जो नगरीय परिवार को धीरे–धीरे अस्थिर तथा विघटित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वह्न कर रहे हैं। निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर इसे भली प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **व्यक्तिवादी प्रवृत्ति**–नगरीय परिवार एकाकी परिवार होने के कारण धीरे–धीरे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का परिवार बन गया है। आधुनिक जीवन शैली। पाश्चात्यीकरण तथा अंतर्जातीय विवाह ने व्यक्ति को एक तरह से स्वार्थी बना दिया है। जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जीवन–यापन तथा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के कारण ही परिवार से जुड़ा रहता है। इच्छाओं तथा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति न होने की दशा में प्रायः परिवार विघटित होने लगते हैं।
2. **कार्यरत् महिलाओं की निरंतर वृद्धि–** अच्छे जीवन स्तर तथा आर्थिक सुदृढ़ता के लिए नगरीय समाज में पति और पत्नी दोनों का कार्यरत् होना आवश्यक माना जाने लगा है। जिससे नगरीय परिवार में कार्यरत् महिलाओं की निरंतर वृद्धि हो रही है। चूंकि भारतीय परम्परागत समाज में घर की पूर्ण जिम्मेदारी तथा समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व केवल एक महिला का ही माना जाता है। ऐसी स्थिति में एक महिला द्वारा घर की पूर्ा जिम्मेदारी तथा कार्यालय के समस्त कार्यों का निर्वह्न एक साथ कर पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में प्रायः परिवार विघटित होने लगते हैं।

3. **सामंजस्य में अस्थिरता**–जैसा कि हमस ब जानते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। किन्तु यह भी वास्तविकता है कि परिवर्तन के साथ–साथ उसमें अनुकूल सामंजस्य बिठाना भी आवश्यक होता है। नगरीय परिवार में नियंत्रण एवं अनुशासन के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति अपने हिसाब से जीवन यापन करना चाहता है। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य सामंजस्य में अस्थिरता आने लगती है। जिससे परिवार विघटित होने लगता है।
4. **समय का अभाव**–नगरीय समाज में परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग तरह की नौकरी तथा व्यवसाय से जुड़ा रहता है। व्यवसाय में विविधता के कारण परिवार के सदसवयों को एक दूसरे के लिए वक्त नहीं मिल पाता। जिससे परिवार के सदस्यों के मध्य अन्तर्क्रिया करने के कम से कम अवसर प्राप्त होते हैं। अतः समय की कमी भी पारिवारिक विघटन का एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।
5. **अनुशासनक का अभाव**–नगरीय परिवार में माता–पिता दोनों के कार्यरत् होने की दशा में माता–पिता का अपने बच्चों पर नियंत्रण प्रायः समाप्त हो गया है। नियंत्रण के अभाव में बच्चे बुरी आदतों का शिकार हो जाते हैं। जो आगे चलकर परिवार को विघटित कर देता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन अथवा अस्थिरता के सम्बन्ध में अनेक समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों ने अपने अलग–अलग मत प्रस्तुत किये हैं जिन्हें निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।[14]

1–**फोल्सम ने पारिवारिक विघटन के चार कारक माने हैं**––

परिस्थिति सम्बन्धी या गैट–व्यक्तित्व कारक–जैसो बुरा स्वास्थ्य, बुरी आर्थिक परिस्थितियां, सम्बन्धियों का हस्तक्षेप, किसी प्रकार का दुर्भाग्य, आवांछित सन्तान इत्यादि।

2–व्यक्तित्व के दोष–पति–पत्नी में से किसी में मानसिक विकार, मद्य सेवक नपुंसकता, बांझपन, अस्वाभाविक यौन प्रवृत्तियां या व्यक्तित्व की विकृतियां का होना।

3–व्यक्तित्व विभिन्नतायें–पति–पत्नी में बौद्धिक, सामाजिक, कलात्मक, पृष्ठभूमि, आर्थिक तथा वेदनाशक्ति सम्बन्धी अन्तर होना।

4–असंगत कार्य–नैराश्य इत्यादि का होना।

ब–**क्रूगर का मत**–पारिवारिक विघटन के मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के तनाव है। क्रूगर ने पारिवारिक तनावों के निम्नलिखित पक्ष बतलाये हैं–

1. सामान्य उद्देश्य समाप्त हो जाना और पारिवारिक लक्ष्यों का स्थान व्यक्तिगत लक्ष्यों द्वारा लिया जाना।
2. सब सहयोगी प्रयासों का बन्द हो जाना।
3. परस्पर सेवाओं का बन्द हो जाना।
4. पति–पत्नी के सम्बन्धों की घनिष्ठता समाप्त हो जाना।
5. अन्य सामाजिक समूहों के साथ परिवारों के बाहरी सम्बन्धों में परिवर्तन होना।
6. पति–पत्नी की उद्वेगात्मक मनोवृत्तियों का परस्पर विरोधी हो जाना या उनकी जगह पर उदासीनता की अभिवृत्ति का स्थापित हो जाना।

स– मोरेर का मत

मोरेर ने निम्नलिखित चार तनावों का वर्णन किया है–

1. आर्थिक तनाव
2. सांस्कृतिक तनाव
3. जीवन निर्वाह् के ढ़ंग से सम्बंन्धित तनाव

द–बर्गेस का मत–बर्गेस के अनुसार अग्रलिखित सात प्रकार के तनाव परिवार का विघटन करते हैं।

1. **आर्थिक**
2. यौन संबंधी
3. स्वास्थ्य संबंधी
4. आदर सम्बन्धी
5. संस्कृति संबंधी
6. स्वभाव सम्बन्धी
7. जीवन प्रतिमान संबंधी

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है। परिस्थिति तथा आधुनिकीकरण के इस दौर में नगरीय परिवार की संरचना में कई सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन आये हैं, किन्तु यह भी वास्तविकता है कि परिवार नामक संस्था का कभी अन्त हनीं हो सकता। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध समाजशास्त्री ब्रजेश एवं लॉक का मानना है कि बदलती हुई परिस्थितियों से सामंजस्य करने के परिवाार के लम्बे इतिहास के कारण और व्यक्तित्व के विकास में तथा व्यक्तिगत संतोष में स्नेह के आदान–प्रदान के उसके काम में महत्व के कारण। इन दोनों कारणों से यह भविष्यवाणी करना सुरक्षित मालूम पड़ता है कि परिवार जीवित रहेंगे।

1.6 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

प्राचीन काल से ही यदि हम समाज की उत्पत्ति व विकास के सम्बंध में अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक समाज अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समाज को संगठित एवं व्यवस्थित एवं व्यवस्थित रखने के लिए समाज के प्रत्येक सदस्य को कुछ अधिकार एवं भूमिकाएं सौंपता है। समाज में रहने वाला प्रत्येक सदस्य भी अपनी योग्यता एवं कार्यकुशलता के आधार पर समाज में एक विशेष प्रस्थिति एवं पद को प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था में स्तरों के रूप में बंट जाता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति या समूहों को उच्च या निम्न पद या प्रस्थिति प्राप्त होती है। वास्तव में सम्पूर्ण समाज में व्यक्तियों एवं समूहों के मध्य उच्चता और निम्नता का यही क्रम सामाजिक स्तरीकरण कहलाता है। मनुष्यों की शारीरिक, नैतिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक भिननता समाज को विभिन्न समूहों में विभक्त कर देती है। नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न पक्षों को समझने से पूर्व सर्वप्रथम सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं को समझना आवश्यक है। सामाजिक स्तरीकरण के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने इसकी अनेकों परिभाषायें दी हैं, जो निम्नांकित हैं–

1. जिस्बर्ट के अनुसार–''सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ समाज को कुछ ऐसे स्थायी समूहों और श्रेणियों में विभाजित कर देने वाली व्यवस्था से है जिसकते अन्तर्गत सभी समूह उच्चता एवं आधीनता के सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे से बधें हैं।[15]
2. मूरे ने सामाजिक स्तरीकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि स्तरीकरण समाज का एक ऐसा विभाजन है। जिसमें सम्पूर्ण समाज को कुछ उच्च तथा निम्न सामाजिक इकाईयों में विभक्त कर दिया जाता है।

   सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने सदस्यों की स्थिति सम्बन्धी भिन्नता के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण को परिभाषित किया है। आपके अनुसार, 'स्तरीकरण केवल विभेदीकरण की वह प्रक्रिया है। जिसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त होती है।[16] पी0 गिसबर्ट के अनुसार– ''सामाजिक स्तरीकरण समाज का उन स्थायी समूहों अथवा श्रेणियों में विभाजन है, जो कि उच्चता एवं अधीनता के सम्बंधों से परस्पर सम्बंध होते हैं।
3. पारसन्स के शब्दों में– ''किसी समाज व्यवस्था में व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों की तुलना में उच्च स्थान प्राप्त होता है।'
4. किंग्सले डेविस ने सामाजिक संस्तरण को सामाजिक असमानता का पर्यायवाची शब्द मानते हुए लिखा है–''सामाजिक असमानता अचेतन रूप से विकसित पद्धति है। जिसके द्वारा समाज यह आश्वासन देते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण पदों पर सोच–विचार कर सबसे अधिक योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियां होती हैं।[17]
5. विलियम्स ने विस्तृत व्याख्या करते हुए पद–व्यवस्था के रूप में सामाजिक संस्तरण का विश्लेषण किया जो किसी विशिष्ट समाज में विशेष अर्थ रखता है। उसके विचार से किसी पद–व्यवस्था का विश्लेषण निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है।[18]

अ– अधिकारों का वितरण। उदाहरणार्थ–आय, सम्पत्ति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, सत्ता आदि।
ब–समाज के सदस्यों का पदसोपान क्रम (प्रतिष्ठा और आदर)
स–पद की कसौटियाःव्यक्तिगत गुण अथवा उपलब्धियां, पारिवारिक सदस्यता, सम्पत्ति या संचित सामग्री या शक्ति।
द–पद के प्रतीक जैसे–जीवन शैली, वेशभूष या परिधान, आवास, संगठनात्मक सदस्यता इत्यादि
य–पदसोपान में परिवर्तनों की सुविधा, कठिनाई या आवृत्ति।
र–व्यवस्था में समान स्थिति वाले व्यक्तियों या समूहों के बीच एकता।

1–अन्तःक्रिया प्रतिमान, गुटसंरचनाःसंगठन सदस्यता, अन्तर्विवाह आदि।
2–विश्वासों, मनोवैज्ञानिकों, मूल्यों की समानता या असमानता।

3–संस्तरण स्थितियों की चेतना।

4–सामूहिक क्रिया जैसे–वर्ग कल्याण।

भारत के प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह लिखते हैं कि ''सामाजिक स्तरीकरण का संबंध क्रमबद्धता, सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय, शक्ति तथा मनुष्य की प्रकृति से है।[19]

इसी प्रकार सामाजिक संस्तरण की अवधारणा को सरल शब्दों में स्पष्ट करते हुए पारसन्स ने कहा कि किसी समाज की सामान्य मूल्य व्यवस्था के मानदण्डों के आधार पर व्यक्तियों की स्थितियों को ऊँचा या नीचा समझा जाता है तथा मनुष्यों में असमानता पाई जाती है। सामाजिक मूल्यों के साथ आचरण की अनुरूपता की मात्रा मनुष्यों में एक दूसरे से कम या अधिक सम्मान, अधिकार या सुविधाएं प्रदान करेन में सहायक होती हैं। यह मूल्यांकन सामाजिक संस्तरण को जन्म देता है।''[20]

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण समाज में जीवनयापन करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के मध्य असमानता की स्थिति स्पष्ट करते हैं। अलग–अलग स्तरों में बंटे हुए समाज के प्रत्येक सदस्य इसी उच्च एवं निम्न स्थिति के अनुरूप दूसरे सदस्यों के साथ व्यवहार करते हैं।

1.7 सामाजिक स्तरीकरण के आधार

जैसा कि हमस ब जानते हैं कि समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अधिकार एवं कर्त्तव्य होते हैं जिसके आधार पर वह समाज को व्यवस्थित रखने में अपना सहयोग प्रदान करता है। यह अधिकार एवं कत्तर्व्य व्यक्ति की समाज में स्थिति को भी निर्धारित करते हैं। प्रत्येक समाज की परिस्थिति के अनुरूप स्तरीकरण के कुछ विशेष आधार होते हैं जो भिन्न–भिन्न समाज एवं समुदाय में अलग–अलग प्रकार के होते हैं। विभिन्न विद्वानों तथा समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न आधारों का उल्लेख किया है।''[21]

1. प्राणिशास्त्रीय आधार
   1–आयु
   2–शिशु
   3–किशोर
   4–युवा
   5–प्रौढ़ या वृद्ध

प्राणिशास्त्रीय आधार पर आयु का विशेष स्थान होता है। जैसे–जैसे आयु में परिपक्वता आती है। वैसे–वैसे अनुभव भी बढ़ता है जो व्यक्ति की समाज में उच्च एवं निम्न स्थिति को परिलक्षित करता है।

2–प्रजाति–प्रजाति जन्मजात शारीरिक लक्षण को परिलक्षित करता है। प्रजाति के आधार पर भी कुछ प्रजातियां अपने को उच्च तथा कुछ प्रजातियां अपने को निम्न मानती हैं।

3–लिंग–प्राचीन काल से ही स्त्री और पुरूष में भेद लिंग के आधार पर किया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में जहां एक और पिता की स्थिति उच्च होती है। वही मातृसत्तात्मक समाज में माता की स्थिति उच्च होती है।

2– सामाजिक आधार

1–जातिगत आधार– भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जातिगत रहा है। जातिगत आधार पर कई जातियां उच्च होती हैं और कई जातियों को निम्न श्रेणी में रखा जाता है। वास्तव में जातिगत स्तरीकरण जन्म पर आधारित होती है तथा इसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

2– अजातिगत वर्ग आधार सामाजिक स्तरीकरण के द्वितीय महत्वपूर्ण आधार अजातिगत (सामाजिक) आधार में एक समाज के अंतर्गत पद स्तरों की एक व्यवस्था उन्नत हो जाती है। जिसके आधार पर समाज विभिन्न स्तरों पर विभाजित हो जाता है। इटेलियन समाजशास्त्री विलफ्रेडो पेरेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना के किसी–न–किसी आधार पर ऊँच–नीच का एक संस्तरण अवश्य हो जाता है। सामान्यतः प्रत्येक समाज दो स्तरों उच्च स्तर तथा निम्न स्तर के विभाजित किया जा सकता है। उच्च स्तर के लोगों के हाथों में शक्ति होती है, जो प्रायः समाज के शासक होते हैं। यह वर्ग प्रभावशाली होता है। जिनके हाथ में समाज का शासन नहीं होता। वह निम्न प्रस्थिति को प्राप्त करता है।

ग–शिक्षा–स्तरीकरण में एक प्रमुख आधार शिक्षा का होता है। शिक्षित वर्ग के सदस्यों की सामाजिक स्थिति अशिक्षित वर्ग से उच्च मानी जाती है।

घ–कार्यकुशलता–वर्तमान समय में व्यक्ति की कार्यकुशलता के आधार पर व्यक्ति का पद एवं योग्यताक ता स्तर निश्चित होता है। जैसे–डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर एवं कलैक्टर।

3–आर्थिक आधार– आर्थिक आधार पर सम्पत्ति एवं धन को मुख्य स्थान दिया जाता है। कार्ल–मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी समाज में सम्पूर्ण सदस्य दो वर्गों में विभक्त होते हैं। प्रथम वर्ग पूंजीपति वर्ग है। जिनका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। द्वितीय वर्ग अपूंजीपति वर्ग या श्रमिक वर्ग जो पूंजीपति वर्ग द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन कार्य में सक्रिय भाग लेते हैं तथा जिसके बदले पारिश्रमिक लेते हैं। इस प्रकार समाज दो वर्गों पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग में विभक्त हो जाता है।

ख–व्यवसाय–सामाजिक स्तरीकरण के आर्थिक आधार का दूसरा प्रमुख आधार व्यवसाय है। औद्योगिक समाज में विभिन्न व्यवसायों की बहुलता होने के कारण समाज प्रायः चार वर्गों में विभक्त होता है। प्रथम तथा द्वितीय वर्ग में अधिकारी वर्ग तथा तृतीय वर्ग में कर्मचारी वर्ग तथा चतुर्थ श्रेणी में मजदूरी वर्ग होते हैं।

4–राजनीतिक आधार–सामाजिक स्तरीकरण को निर्धारित करने में राजनीतिक आधार एक महत्वपूर्ण आधार है। राजनीतिक आधार एक महत्वपूर्ण आधार है। राजनीतिक सत्ता के आधार पर समाज दो वर्गों शासक तथा शासित में विभक्त होता है। जिस वर्ग के हाथ में शासन की बागडोर होती है। उसकी प्रस्थिति उस वर्ग के सदस्यों से उच्च होती है। जिनके हाथों में शासन की सत्ता नहीं होती है।

5–धार्मिक आधार– धार्मिक आधार सामाजिक स्तरीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार है जैसे रोमन कैथोलिक चर्च का एक विश्वव्यापी स्तरीकरण है। जिसके शीर्ष पर पोप होते हैं। इसके फैले हुए कई कार्य विभिन्न शासक तंत्रीय कार्यालयों और शाखाओं द्वारा सम्पन्न होते हैं और अन्य शासन तंत्रों की भांति यहां भी सभी यह नियुक्ति द्वारा भरे जाते हैं।

6–सांस्कृतिक आधार– सांस्कृतिक आधार पर स्तरीकरण भाषा बौद्धिक कुशलता, कलात्मक कुशलता आदि आधारों पर समाज में स्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है।

1.8 सामाजिक, स्तरीकरण के स्वरूप

सामाजिक व्यवस्था में जब समाज के प्रत्येक सदस्य उच्च एवं निम्न पदों एवं प्रस्थिति के आधार पर विभाजित होते हैं, तब वह सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न स्वरूपों एवं प्रकारों को भी निश्चित करते हैं। विभिन्न समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों ने सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया है।

1–पिटरिम सोरोकिन[22] सोरोकिन के अनुसार सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख प्रकार या स्वरूप है–आर्थिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक। सामान्य रूप से ये तीनों प्रकार के स्तरीकरण एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं। ऐसा देखा गया है कि एक क्षेत्र में जिस व्यक्ति की स्थिति ऊँची होती है। वह दूसरे क्षेत्र में भी ऊँची स्थिति ऊँची होती है। वह दूसरे क्षेत्र में भी ऊँची स्थिति को प्राप्त करता है। जबकि एक क्षेत्र में निम्न स्थिति वाला व्यक्ति अन्य क्षेत्र में भी निम्न स्थिति का ही अधिकारी होता है।

सोरोकिन ने सामाजिक स्तरीकरण के तीन प्रमुख स्वरूपों की विवेचना को अलग–अलग रूपों में प्रस्तुत किया है।

1. **आर्थिक स्तरीकरण**–आर्थिक क्षेत्र में पाए जाने वाले स्तरीकरण का आधार आय, सम्पत्ति पर अधिकार तथा पेशा हो सकता है। चूंकि ये सभी आधार परिवर्तनशील हैं। अतः आर्थिक स्तरीकरण में उतार–चढ़ाव भी सम्भव है। आर्थिक उतार–चढ़ाव के सम्बन्ध में सोरोकिन के निष्कर्ष इस प्रकार है–
   - औसत सम्पत्ति तथा आय अलग–अलग समाज व समूह में अलग–अलग होती है।
   - औसत सम्पत्ति तथा आय एक ही समाज या समूह में अलग–अलग समय में अलग–अलग हो सकती है।
   - आर्थिक समृद्धि या पतन का कोई चिर स्थायी नियम या प्रवृत्ति नहीं होती है। अर्थात् आर्थिक समृद्धि का बढ़ना या घटना अनेक कारकों तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता है।
   - इस दृष्टिकोण से केवल व्यापार चक्र ही नहीं, अपितु वृहतर सामाजिक, आर्थिक चक्र भी हो सकते हैं।
   - अन्तहीन आर्थिक प्रगति का सिद्धान्त गलत है। क्योंकि समाज या समूह के जीवन में आर्थिक पतन की स्थिति भी स्वभाविक हो सकती है।
2. **राजनीतिक स्तरीकरण**–सभ्यता एवं विकास व समाज के आकार व प्रकार में विस्तार के साथ–साथ जैसे–जैसे राजनैतिक संरचना व संगठन में जटिलता बढ़ती गई। वैसे–वैसे राजनीतिक स्तरीकरण भी उत्तरोत्तर जटिल होता गया। आज स्थिति यह है कि जिस समाज में

जिस प्रकार की सरकार है। जैसे प्रजातंत्र, तानाशाही आदि के अनुसार राजनीतिक क्षेत्र में स्थितियों का बंटवारा या स्तरीकरण है। जैसे राजनीतिक स्तरीकरण में सर्वोच्च स्थान राष्ट्रपति का उसके बाद उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, मंत्री, उपमंत्री आदि। इस सम्बंध में सोरोकिन के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

- जब एक जटिल राजनीतिक संगठन का आकार बढ़ता है। अर्थात् जब उसकी सदस्यता बढ़ती है, तो राजनीतिक स्तरीकरण भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत संगठन का आकार घटने से स्तरीकरण भी कम हो जाता है।
- जब राजनीतिक संगठन के सदस्यों में भिन्नता या विषमता बढ़ती या घटती है, तो राजनीतिक स्तरीकरण भी विस्तृत या संकुचित हो जाता है।
- जब उपरोक्त दोनों कारक घटते या बढ़ते हैं, तो राजनीतिक स्तरीकरण के घटने या बढ़ने की सम्भावना और भी बढ़ जाती है।
- जब उपरोक्त कारकों में कोई एक या दोनलों कारक एकाएक बढ़ जाते हैं। जैसे कि सैनिक विषय अथवा विद्रोह या क्रान्ति द्वारा सरकार को पलट देना। उस अवस्था में राजनीतिक स्तरीकरण में भी गम्भीर परिवर्तन व विस्तार हो सकता है।
- जब उपरोक्त कारकों में एक बढ़ता है और दूसरा घटता है,तो वे एक–दूसरे के प्रभाव को रोक लेते हैं।

व्याासायिक स्तरीकरण–सोरोकिन के अनुसार व्यावसायिक स्तरीकरण के दो दृष्टिकोणों का विवेचन किया है।

1–अन्तव्यावसायिक स्तरीकरण
2–अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण

अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण–विभिन्न व्यवसायों की अच्छाई या बुराई (उत्तमता या अधमता) के आधार पर व्यावसायिक स्तरीकरण किया जाता है। अर्थात् विभिन्न व्यवसायों व उनको अपनाने वाले लोगों को ऊँच–नीच के क्रम में रखा जाता है।

अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण–इसका अर्थ है कि एक ही प्रकार के व्यवसाय में विभिन्न स्तरों का अर्थात् विभिन्न स्थिति वाले व्यक्तियों का होना। एक ही प्रकार का पेशा करने वाले सभी लोगों की स्थिति एक सी नहीं होती है। उनमें भी आपस में ऊँच–नीच का एक संस्तरण हो सकता है। शशि के जैन के अनुसार स्तरीकरण असमानता का वह स्वरूप है। जिसमें समाज के सदस्य ऊँचे–नीचे पदों या स्थितियों पर विभाजित रहते हैं जो स्तरीकरण के स्वरूप या प्रकार को निश्चित करते हैं।[23]

1. **दासता**–दासता स्तरीकरण का वह स्वरूप है जो समाज को दो वर्गों मे विभातित करता है जिन्हें स्वामी तथा दास कहा जाता है। किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा प्रथा या प्रचलन

के रूप में अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को दास रखने की क्षमता और दासों की संख्या के आधार पर स्तरीकरण होता था।

2. **एस्टेट**–एस्टेट सामाजिक संस्तरण का वह स्वरूप है जो दासता के पश्चात् सामन्तवादी युग में विकसित हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्ट अधिकारों से युक्त समूह को एस्टेट या जागीरदारी कहा जाता है। एस्टेट जनसंख्या का वह भाग है जिसे संस्तरण में उच्च स्थान और विशेष सामाजिक अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इन अधिकारों और सुविधाओं को कानूनी अभिमति प्राप्त होती है। एस्टेट व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्तवादी समाज तीन ऊँचे और नीचे समूहों में विभाजित था। जिसमें प्रथम स्थान पुजारियों का था, जो पूजा–पाठ करते थे। दूसरा स्थान भद्र पुरूष या कुलीन व्यक्ति का था, जो युद्ध इत्यादि के समय सुरक्षा की जिम्मेदारी निभाते थे। और तीसरे स्थान पर श्रम करने वाले सामान्य लोग थे।
3. **जाति**– यह प्रतिबंधित संस्तरण का वह स्वरूप है। जिसमें जन्म के साथ व्यक्ति की प्रस्थिति जीवन पर्यन्त हेतु निर्धारित हो जाती है। जाति क साथ धार्मिक अभिनति जुड़ गई है। जाति की व्याख्या एक कठोर वर्ग के रूप में की गई है और स्थिति समूह के रूप में भी यद्यपि जाति प्रथा एक अपरिवर्तनीय स्थायी व्यवस्था प्रतीत होती हैं फिर भी गतिशील तथ्य है। जाति अन्तर्विवाही एवं जन्मजात समूह है। जिसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
4. **वर्ग**–सामाजिक वर्ग स्तरीकरण का वह प्रकार है। जो आधुनिक युग में अधिक प्रचलित है। वर्ग ऊँची–नीची स्थिति वाले आर्थिक समूहों के रूप में समझे जा सकते हैं। जिन्हें कोई धार्मिक या कानूनी अभिनति प्राप्त नहीं होती। वर्ग स्तरीकरण का मुक्त स्वरूप है। वर्ग के सदस्य अपनी स्थिति के अनुसार अन्य समूहों को ऊँचा या नीचा समझकर व्यवहार करते हैं।
5. **प्रस्थिति समूह**– आधुनिक समाजों में उपभोग स्तरीकरण का मुख्य आधार बन रहा है। मैक्स वेबर ने उपभोग की मात्रा को आधार मानकर ऊँचे नीचे सामाजिक स्तर का निर्धारण करने का प्रयत्न किया है। अधिक खर्च करने वाले उच्च प्रस्थिति में होते हैं।

3–रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा के अनुसार[24]

1. जाति पर आधारित स्तरीकरण–
    1. जाति जन्मजात होती है।
    2. जति में खान–पान सम्बन्धी निश्चित नियम होते हैं।
    3. अधिकांश जातियों के व्यवसाय निश्चित होते हैं।
    4. जाति में ऊँच–नीच और छूआछुत के नियम होते हैं।
    5. जाति अन्तर्विवाही होते हैं।
    6. जाति में बन्द स्तरीकरण पाया जाता है। (जन्म पर आधारित)
2. वर्ग पर आधारित स्तरीकरण–
    1. वर्ग की सदस्यता हैसियत, जीवन का स्तर आदि वस्तुगत बातों पर आधारित है।
    2. वर्ग व्यवस्था जाति व्यवस्था के समान प्रजातन्त्र में बाधक नहीं है।
    3. वर्ग व्यवस्था जाति व्यवस्था के समान प्रजातन्त्र में बाधक नहीं है।
    4. वर्गों में सामाजिक दूरी अत्यधिक नहीं होती।
    5. वर्गों में स्तरीकरण पाया जाता है। (व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर)

3. लिंग पर आधारित स्तरीकरण–अधिकांश मानव समाजों में स्त्री–पुरूष की सामाजिक स्थिति समान नहीं होती और इसलिए लिंग–भेद के आधार पर स्तरीकरण दिखलाई पड़ता है। आधुनिक समाज में इस प्रकार का लिंगभेद पर आधारित स्तरीकरण समाप्त हो रहा है।
4. आयु पर आधारित स्तरीकरण–प्रत्येक समाज में आयु के आधार पर व्यक्ति के कार्यों, उत्तरदायित्वों, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि में अन्तर किया जा सकता है। और इस प्रकार विभिन्न आयु में स्तरीकरण अलग दिखलाई पड़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज में सामाजिक स्तरीरण के अनेकों स्वरूप पाये जाते हैं। जिसके विभिन्न आधार होते हैं। किन्तु संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों में मुख्य रूप से आर्थिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, शिक्षा, व्यक्ति की प्रस्थितियां तथा प्रजाति आदि है।

1.9 नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधार

समाज के सन्दर्भ में यदि बात की जाए तो प्रत्येक समाज चाहे उसकी सामाजिक संरचना किसी भी प्रकार की क्यों न हो, किसी न किसी आधार पर ऊँची और नीची स्थितियों वाले विभिन्न समूहों में विभक्त होते हैं ऐसा किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती, जो अलग–अलग प्रस्थितियों में विभाजित न हो, नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के आधारों पर यदि बात की जाए, तो नगरीय समाज निम्नांकित आधारों पर विभाजित होता है–

1. आयु
2. लिंग
3. शिक्षा
4. पारिवारिक पृष्ठभूमि
5. व्यवसाय
6. सम्पत्ति

नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के दो प्रमुख भागों में विभाजित है[25]

1- पूर्व–औद्योगिक समाजों में सामाजिक स्तरीकरण–औद्योगिक समाज की पूर्व–औद्योगिक समाज से भिन्नता सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर की जा सकती है। जोबर्ग के अनुसार–''पूर्व औद्योगिक नगरों में वर्ग के आधार पर स्तरीकरण पाया जाता था। कुछ व्यवसाय अधिक महत्व के थे एवं उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर अधिक मूल्यवान माना जाता था। उनसे सम्बन्ध सामाजिक शक्ति एवं प्रतिष्ठा व्यक्ति को सामाजिक पद सोपानक्रम में उच्च स्थान दिलाने का कार्य करती थी। सम्पूण्र जनसंख्या में से लगभग 5–10 प्रतिशत जनसंख्या नगर में प्रभावी होती थी। पूर्व–औद्योगिक समाज के नगरों का सामाजिक स्तरीकरण औद्योगिक समाज के नगरों का साजिक स्तरीकरण औद्योगिक समाज के स्तरीकरण से मूल रूप से सामाजिक वर्गों की

गतिशीलता का अभाव था। सामाजिक वर्गों की सदस्यता में परिवर्तन करने के सामाजिक अवसर लगभग नहीं थे। व्यक्ति सामाजिक संरचना के जिस स्तर में होता था। उसी में वह जीवन भर रहता था। समाज के सबसे ऊँचे स्तर जिसकी संख्या कुल जनसंख्या की बहुत कम होती थी। समाज के सम्पूर्ण वर्गों पर उस वर्ग का प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता था।[26]

2. औद्योगिक नगरों में सामाजिक स्तरीकरण–औद्योगिकरण की प्रक्रिया को विशेष बल मिला है। औद्योगिकरण की प्रक्रिया की तीव्र गति के साथ ही समाज में श्रम–विभाजन और बड़े–बड़े नगरों का विकास तीव्र गति से हुआ, जिसका प्रभाव समाज व्यवस्था पर अनेकों रूपों में पड़ा और दूसरी ओर नगर की कठोर समाज व्यवस्था के नियमों में शिथिलता उत्पन्न हुई। नगर की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक वर्गो की भिन्नता का एक आधार जीवनशैली भी है। वोशकोफ ने जीवन शैली के आधार पर निम्न वर्ग बताए हैं–उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग। नगरों में सामाजिक वर्गों की भिन्नता स्पष्ट की है। उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग की जीवन शैली भिन्न होती है। वे सामाजिक स्तर के आधार पर जीवन की प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त करते हैं।

1.10 भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीकरण

भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण का एक विशेष स्वरूप पाया जाता है। जिसे जाति व्यवस्था कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति को जाति जन्म से प्राप्त होती थी तथा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपनी जाति को परिवर्तित नहीं कर सकता था। इसलिए जाति व्यवस्था को एक बन्द वर्ग कहा जाता है। जाति व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपनी जाति की विभिन्न इकाईयों पर परस्पर निर्भर पायी जाती थी। साथ ही सम्पूर्ण जाति व्यवस्था पवित्रता एवं अपवित्रता पर आधारित थी। जिसकते आधार पर ही व्यक्ति को समाज में पद एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती थी।

इस सम्बन्ध में आन्द्रे बिताई का मत है कि जाति व्यवस्था के विभिन्न वर्ग की एक–दूसरे से सह–सम्बद्धता प्रमुख रूप भारतीय ग्रामों तक सीमित है। नगरों में भी जाति व्यवस्था पायी जाती है। यद्यपि नगरों में जाति व्यवस्था के संगठन का स्वरूप ग्रामों में पायी जाने वाली जाति–व्यवस्था के संगठन के स्वरूप से भिन्न है। ग्रामों में जाति–व्यवस्था आधिक जटिल है। संगठन के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है। जबकि नगरों में जाति व्यवस्था के नियमों का पालन कराना कठिन कार्य है। आधुनिक औद्योगीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से नगरों में जाति व्यवस्था में हो रहे अनेकों परिवर्तनों ने नगरों में आवागमन के साधन में वृद्धि व्यवसाय की परिस्थिति ने जाति नियमों के पालन के अवसर कम कर दिए हैं।''[27]

भारतीय नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के सम्बन्ध में यदि बात की जाए, तो वर्तमान समय में नगरीय समाज में नये सामाजिक वर्ग विकसित हो रहे हैं। ये चार नये सामाजिक वर्ग निम्नवत् हैं–

1. उच्च वर्ग
2. उच्च मध्यम वर्ग
3. मध्यम वर्ग

4. निम्न वर्ग

इन वर्गों में सामाजिक पद एवं प्रतिष्ठा के समस्त नियम भी नवीन हैं जो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में नगरों के विकास, नगरीकरण, पश्चिमीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जातिगत व्यवस्था पर अनेकों परिवर्तन ला दिए हैं। जिससे जातीय आधार या नियम धीरे–धीरे शिथिल हो रहे हैं। जातिगत बंधनों के स्थान पर शिक्षा, व्यवसाय एवं आर्थिक सुदृढ़ीकरण को विशेष स्थान दिया जाने लगा है। यही कारण है कि योग्यता एवं कुशलता के आधार पर ही नगर में पाएए जाने वाले अलग–अलग वर्गों की सामाजिक प्रस्थिति अलग–अलग प्रकार की होती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री अनिल भट्ट का मानना है कि भारती समाज के नगरों की सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया मूल रूप से सामाजिक गतिशीलता व्यक्तिगत प्राप्ति से सम्बन्धित है। सामाजिक आर्थिक आधार जाति से अलग होकर नवीन भूमिका में विकसित हो रहे हैं।

इसी प्रकार कारविन का मानना है कि उभरते हुए नगरों की सामाजिक संरचना में जाति का महत्व धीरे–धीरे कम होकर सामाजिक वर्गों का महत्व बढ़ रहा है। जो इस बात का प्रतीक है कि वर्ग की संरचना पर धन, उच्च शिक्षा एवं उच्च प्रतिष्ठा के पदों का प्रभाव पड़ता है। नगर के सामाजिक पदसोपान–क्रम के निर्माण में जाति कमे स्थान पर ध्यान, उच्च शिक्षा, उच्च प्रतिष्ठा के पद महत्वपूर्ण हो रहे हैं मौरिस ने भारत में सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''ग्रामों के स्तरीकरण पर जहाँ बन्द सामाजिक व्यवस्था के नियमों का प्रभाव पड़ता है। वहाँ नगरों में खुली समाज–व्यवस्था के नियमों का प्रभाव पड़ता है तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों के विकास एवं उनके द्वारा प्राप्त सामाजिक प्रतिष्ठा उनकी सामाजिक प्रस्थिति निर्मित करते हैं।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार–''उच्च जाति के सामाजिक प्रभाव में कमी आई है तथा मध्य नगरीय स्तर पर यह प्रक्रिया अधिक महत्व की है।''[28]

1.11 व्यवसायिक विभाजन का अर्थ एवं परिभाषा

वर्तमान युग आधुनिक समाज का युग माना जाता है। वास्तव में आधुनिक समाज में व्यवसाय को वर्ग निर्धारण का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। समाज में जहां एक ओर व्यवसाय आर्थिक सुदृढीकरण को बढ़ावा देता है, वहीं व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का भी प्रतीक माना जाता है। वास्तव में समाज जैसे–जैसे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है। वैसे–वैसे समाज में व्यवसायिक विभाजन भी तीव्रता से हो रहा है। व्यावसायिक विभाजन उन समाजों में अधिक देखने को मिलता है। जिन्होंने औद्योगीकरण की प्रक्रिया को आत्मसात् किया है। इस संदर्भ में शशि0 के0 जैन का मानना है कि व्यवसाय पर निर्धारित वर्ग संरचना की व्याख्या में एक मुख्य कठिनाई यह है कि उच्च वर्ग के अधिकांश लोगों को किसी व्यावसायिक श्रेणी में शामिल करना, पैतृकता से प्राप्त सम्पत्ति और प्रतिष्ठा को किसी व्यवसाय के साथ जोड़ा जाना तथा व्यवसाय के आधार पर किसी की आर्थिक, प्रतिष्ठा का अनुमान लगाना कठिन है। भारत में एक ही व्यवसाय में लगे लोगों की आर्थिक शक्ति में अन्तर होता है। एक क्लर्क अपनी उपर की आमदन से पर्याप्त धनी हो जाता है, जबकि उसी के साथ कार्य करने वाला दूसरा क्लर्क कठिनता से घर का खर्च चलाता है। एक ही स्तर की नौकरी करने वाले लोगों की पैतृक

आर्थिक पृष्ठभूमि का अन्तर भी उनके उपयोग के स्तर में और तदनुसार उनकी सामाजिक स्थिति में अन्तर कर देता है।[29]

विरेन्द्र सिंह के अनुसार–''प्रत्येक जटिल समाज में श्रम विभाजन तथा पदों की उच्चता, न्यूनता देखने को मिलती है। समाज का नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथ में है जो उच्च पदों को सुशोभित करते हैं। ऐसे लोग जो उच्च पदों पर आसीन हैं। उनकी संख्या सीमित है। इसके विपरित निम्न पद वाले लोगों की संख्या अधिक, जिनमें वे लोग आते हैं। जो हाथ से काम करते हैं या शारीरिक श्रम के जीविकोपार्जन करते हैं। इन्हें श्रमिक भी कहा जाता है।

लिपसेट तथा बेनडिक्स ने लिखा है कि सामान्य शब्दों में एक व्यक्ति जो अपनी व्यावसायिक प्रस्थिति को बढ़ाता है। वह साधारणतया अपनी सामाजिक प्रस्थिति को भी बढ़ाने का प्रयास करता है। लेकिन अगर व्यावसायिक प्रस्थिति जारी है या कम हुई है, तो वह व्यक्ति अपने पहले जैसी सामाजिक स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करता है। सामाजिक स्थिति का प्रत्यक्ष प्रभाव व्यावसायिक विकास पर पड़ सकता है। उसी प्रकार व्यवसायिक प्रस्थिति सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए जिम्मेदार हो सकती है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यवसायिक विभाजन के आधार पर हो। व्यक्ति को पद और प्रतिष्ठा का मूल्यांकन होता है जो व्यक्ति की समाज में आर्थिक स्थिति का आंकलन भी करता है तथा व्यक्ति की समाज में विभिन्न वर्गों में भी विभाजित करता है। वास्तव में कोई भी व्यवसाय व्यक्तियों द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्द्ध प्रतिष्ठा मात्र किसी व्यवसाय के कार्यात्मक महत्व, जो परिवर्तनशील तत्व है। या उस व्यवसाय की कमी या उससे उपलब्ध आय पर आश्रित नहीं है, बल्कि व्यवसायों में अपेक्षित कौशल, उनके लिए अपेक्षतः प्रशिक्षण एवं ज्ञान, उनमें व्यस्त लोगों के प्रतिष्ठा, उनका अभाव, उन व्यवसायों में संभाव्य वैयक्तिक स्वतंत्रता की मात्रा तथा अन्य अनेक अयुक्तिक तत्वों पर आधारित है। जो लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों के मूल्यांकन का प्रभावित करते हैं और जो मूल्यांकन विभिन्न समाजों में तथा एक ही समाज में विभिन्न कालों में भिन्न–भिन्न होता है।[30]

सरल शब्दों में यदि व्यवसायिक विभाजन के अर्थ को परिभाषित किया जाए, तो किसी भी समाज में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर आर्थिक सुदृढ़ता के लिए किये गया कोई भी व्यवसाय, जो उसे समाज में अन्य लोगों से विभक्त करता है। व्यवसायिक विभाजन कहलाता है।

1.12 व्यवसायिक विभाजन के प्रकार

व्यवसायिक विभाजन दो प्रकार के होते हैं।

- क्षैतिज विभाजन–क्षैतिज विभाजन का तात्पर्य होता है कि व्यक्ति के व्यवसायगत स्थिति में किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन न होना।

- लम्बवत् विभाजन–लम्बवत् विभाजन में उन परिवर्तनों को सम्मिलित किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति की परम्परागत प्रस्थिति में परिवर्तन आ जाते हैं। जैसे कोई भी व्यक्ति योग्यता और कुशलता के आधार पर एक साधारण व्यक्ति से उच्च पदों को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में व्यवसायिक विभजान को व्यावसायिक गतिशीलता के आधार पर देखा जा सकता है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति व्यवसायिक गतिशीलता के आधार पर ही विभिन्न प्रकार के व्यवसायों की प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन स्तर में परिवर्तन लाने तथा उच्च जीवन शैली को अपनाने की इच्छा के कारण परम्परागत व्यवसाय को छोडकर उच्च व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं इस सम्बन्ध में प्रो0 राधाकमल मुखर्जी का मानना है कि जातीय परिवर्तनों की गत्यात्मकता के आर्थिक और सामाजिक दोनों पक्ष हैं। आर्थिक पक्ष तथाा सम्बन्ध जातियों के व्यावसायिक विशिष्टीकरण में होने वाले सामाजिक गतिशीलता एक प्रक्रिया है। जिसके परिणामस्वरूप लोग समाज में एक स्थिति से दूसरी स्थिति को प्राप्त करते हैं।

लिपसेट ने दो प्रकार की व्यावसायिक गतिशीलता का उल्लेख किया है[31]

1. अंतर पीढ़ीगत गतिशीलता–इसके अंतर्गत उस गतिशीलता को सम्मिलित किया जाता है जैसे यदि कोई लड़का अपने पिता की भांति परम्परागत पेशा (शारीरिक श्रम सम्बन्धी) छोड़कर सफेदपोश में आ जाये।
2. आंतरिक पीढ़ीगत गतिशीलता–यह वह गतिशीलता है जो एक ही पेशे अथवा एक ही धरातल पर होती रहती है। सामाजिक गतिशीलता की इच्छा जाति समूहों के माध्यम से मुखर हुई जो क्षैतिज एकीकरण में वृद्धि के कारण संचार–साधनों में सुधार के साथ हुई। विस्तृत क्षेत्र में रहने वाली सम्बद्ध जातियां गतिशीलता की प्रक्रिया में खींच आई।

   व्यवसायिक विभाजन को व्यवसायिक स्तरीकरण के आधार पर यदि देखा जाए तो प्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने व्यवसायिक स्तरीकरण के दो प्रकार बताये हैं।[32]

1–अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण– सोरोकिन ने रास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण के दो प्रमुख आधार बताये हैं–

- समग्र रूप में एक समूह के जीवन अस्तित्व के लिए एक व्यवसाय या पेशे का महत्व।
- एक पेशे की सफलतापूर्वक करने के लिए आवश्यक बुद्धि की मात्रा।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि सम्पूर्ण सामाजिक संगठन व नियंत्रण के दृष्टिकोण से जो पेशा महत्वपूर्ण है और जिसे करने के लिए अधिक मात्रा में बुद्धि की जरूरत होती है उस पेशे का और उसे करने वाले लोगों का स्थान अन्तर्व्यावसायिक स्तरीकरण में ऊँचा होता है। अधिकांश व्यावसायिक कार्यों का सम्बन्ध सामाजिक संगठन और नियंत्रण से होता है और उस दृष्टिकोण से उस कार्य का जितना महत्व होगा और उसे सफलतापूर्वक करने के लिए जितनी मात्रा में बुद्धि की आवश्यकता होगी उसी क्रम

या अनुपात में उस कार्य को करे वाले समूह को विशेषाधिकार प्राप्त होंगे और अन्तर्व्यावसायिक संस्तरण में उस समूह की स्थिति उतनी ही उच्चतर होगी।

2– अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण–एक ही प्रकार के व्यवसाय में विभिन्न स्तरों का अर्थात् विभिन्न स्थिति वाले व्यक्तियों का होना। यह मानी हुई बात है कि एक ही प्रकार का पेश करने वाले सभी लोगों की स्थिति एक सी नहीं होती है। उनमें भी आपस में ऊँच–नीच का एक संस्तरण हो सकता है। सोरोकिन के अनुसार किसी भी व्यवसायिक समूह के सदस्यों को तीन स्तरों पर बांट सकते हैं–

- व्यवस्थापक, साहसिक या मालिक जो कि आर्थिक तौर पर स्वतं होते हैं और अपने व्यवसाय व कर्मचारियों के संगठन व नियंत्रण के मामले में स्वयं ही सर्वोच्च अधिकारी होते हैं।
- उच्चतर श्रेणी के कर्मचारी जैसे–निर्देशक मैनेजर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के सदस्य आदि ये व्यवसाय के स्वयं मालिक नहीं होता। वे अपनी सेवाओं को बेचते हैं और वेतन प्राप्त करते हैं और व्यवसाय से सम्बंधित महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
- वेतनभोगी साधारण कर्मचारी जो कि उच्चतर श्रेणी के कर्मचारियों से कहीं कम होता है और उन्हें अधीनस्थ रहकर काम करना पड़ता है। सोरोकिन के अनुसार इन प्रमुख स्तरों के अतिरिक्त विभिनन व्यावसायों में उनकी प्रकृति के अनुसार अनेक अन्तः व्यावसायिक स्तरीकरण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ–डाक विभागीय कमचारी के रूपा में सर्वोच्च पद पर डायरेक्टर होता है। उसके बाद क्रमशः पोस्टमास्टर–जनरल, डाक अधीक्षक, पोस्ट मास्टर, डिप्टी पोस्टमास्टर, सहायक पोस्टमास्टर, इंस्पेक्टर, सुपरवाइजर, व्यावसायिक स्तरीरण का एक उत्तम उदाहरण है। विशेष योग्यता, कुशलता, सेवा की अवधि आदि के आधार पर अन्तः व्यावसायिक स्थिति ऊँची उठ सकती है। अर्थात् पदोन्नति हो सकती है। उसी प्रकार अकुशलता या अपराध के आधार पर एक व्यक्ति वर्तमान पद से नीचे भी उतारा जा सकता है।''

विद्याभूषण एवं डी0आर0सचदेव[33] का मानना है कि सम्पत्ति ही इस बात का अधिकांशतः निर्णय करती है कि किसी व्यक्ति की शिक्षा क्या होगी और इस शिक्षा की बदौलत कौन से व्यवसाय उसके लिए खुले हैं। सामाजिक वर्ग एवं वयवसाय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हैं व्यवसाय भले ही प्रस्थिति का पूर्णता सही सूचक न हो। परन्तु फिर भी इससे सामाजिक वर्ग, इसके जीवन–यापन की विधि समाान्य सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

विद्याभूषण तथा ढी.आर सचदेव ने इस सम्बंध में आगे लिखा है कि इसी प्रकार अकृषिकर क्षेत्रों में भी व्यवसाय सामाजक स्थिति का एक उपयोगी सामान्य सूचक है। तथाकथित सफेदपोश व्यवसायों की सामाजिक प्रस्थिति अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक है। चाहे उसके आय कम ही हो, कम वेतन पाने वाले अध्यापक का सामाजिक पद अधिक वेतन पाने वाले मिस्त्री से अकि हे। स्पष्टतया, आया सामाजिक स्थिति का निर्धारण नहीं करती। मंत्रियों, सचिवों आयुक्तों का सामाजिक पद धनी व्यापारियों के सामाजिक पद से अधिक ऊँचा है। चाहे पूर्वोत्तकों की आर्थिक स्थिति निम्न ही क्यों न हो। व्यवसाय सम्बन्धी सामाजिक पद का सर्वेक्षण संयुक्त राज्य में ''राष्ट्रीय मतशोध केन्द्र द्वारा 1947 में किया गया था।[34]

इसी प्रकार डेविस के अनुसार,– विभिन्न व्यवसायों के उपेक्षित स्तर–निर्धारण के दो प्रमुख तत्व हैं–

–किसी व्यवसाय का कार्यात्मक महत्व।

–मांग की अपेक्षा उस व्यवसाय के आदमियों की कमी[35]

हेनरी जॉनसन के अनुसार[36]

1–एक ही व्यवसाय में विभिन्न बुद्धि, वैभव, ज्ञान और कौशल के व्यक्ति होते है। इसलिए किसी व्यवसाय की प्रतिष्ठा की व्याख्या सामाजिक गुणों के आधार पर होनी चाहिए। न कि व्यवसाय के कार्यात्मक महत्व के संदर्भ में।

2– एक ही व्यवसाय में विभिन्न कार्य या नौकरिया होती हैं, जो मान अथवा प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं इस प्रकार किसी व्यवसाय के कार्यत्मक हत्व का अनुमान लगाते समय उस व्यवसाय की विभिन्न व्यावसायिक दशाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

3– किसी व्यवसाय को करने वाले व्यक्तियों की उस व्यवसाय में सफलता की मात्रा भिन्न–भिन्न हो सकती है। इसलिए किसी व्यक्ति के लिए उसके व्यवसाय की प्रतिष्ठा का अंकन करते समय उसकी वयावसायिक कुशलता को ध्यान में रखना होगा।

4–अपेक्षित कार्यात्मक महत्व निरंकुश समाज की अपेक्षा छोटी सामाजिक प्रणाली में सामान्यतः अधिक सुगमता से आंका जा जा सकता है। कार्यात्मक महत्व में काफी विभिन्नताएं हो सकती है।

1.13 व्यवसायिक विभाजन के परिणाम

व्यवसायिक विभाजन के निम्न परिणाम हो सकते है–

1. वर्गों का विकास–व्यवसायिक विभाजन के परिणामस्वरूप नये–नये वर्गों का उदय होता है। जिसमें प्रत्येक वर्ग के अपने व्यवहार, मूल्य तथा व्यवसाय होत हैं। जो सम्पूर्ण समाज में एका विशिष्ट पद एवं प्रस्थिति का प्रदान करता है। जो प्रायः उच्च एवं निम्ना प्रस्थिति एवं पदों में विभाजित होते हैं।
2. संगठनों का विकास–व्यवसायिक विभाजन से अनेक नये–नये संगठनों का विकास होता है, जो व्यक्ति के सम्बन्धों एवं प्रस्थिति का भी निर्धारण करते हैं।
3. व्यवसायिक गतिशीलता में वृद्धि–व्यवसायिक विभाजना के फलस्वरूप व्यवसायिक गतिशीलता को भी बढ़ावा मिलता है।
4. धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन–व्यवसायिक विभाजन का एक प्रमुख परिणाम धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन को माना जाता है। ग्रामीण समाज से निकल कर व्यक्ति जब नगरीय समुदाय में प्रवेश करता है, तो वह अनेक धर्म एवं जाति के लोगों के सम्पर्क में आता है। जिसके परिणामस्वरूप बहुत सी धार्मिक मान्यताएं बदल जाती है। तथा व्यक्ति अंधविश्वास एवं पारम्परिक रूढ़िवादिता को त्याग कर तार्किकता को अपनाता है।

5. जाति प्रथा में परिवर्तन–व्यावसायिक विभाजन को धर्म निरपेक्षीकरण की भावना को विकसित करने में अपनी अहम् भूमिका का निर्वह्न किया है। व्यवसायिक विभाजन के कारण व्यक्ति के जातिगत कठोर बंधन धीरे–धीरे शिथिल हो रहे हैं जिससे व्यक्ति अपने कट्टर धार्मिक नियमों को परिवर्तित करके प्रत्येक जाति के साथ मिलजुल कर कार्य करना ज्यादा पसंद करते हैं।
6. जातिगत व्यवसाय में परिवर्तन–प्राचीन काल से प्रत्येक जाति को जातिगत व्यवसाय को सदैव से ही प्रमुख माना जाता था। किन्तु वर्तमान समय में व्यावसायिक विभाजन के कारण वयक्ति की योग्यता एवं कुशलता को विशेष महत्व दिया जाता है। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी रूचि एवं कार्य कुशलता के आधार पर अपने व्यवसाय का चुनाव करता है। अतः: व्यवसायिक विभाजन का एक प्रमुख परिणाम यह रहा कि व्यक्ति के प्राचीनतम जातिगत व्यवसाय में धीरे–धीरे परिवर्तन आने लगा है।

1.14 व्यावसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकीकरण में योगदान

व्यावसायिक विभाजन का नगरीकरण व आधुनिकरण की प्रकिया में निम्नांकित योगदान को स्पष्ट किया जा सकता है।[37]

- ✓ आधुनिकीकरण को व्यक्त करने वाले परिवर्तन को जन्म देता है।
- ✓ व्यावसायिक गतिशीलता में वृद्धि को स्पष्ट करता है।
- ✓ अर्जित योग्यताओं के आधार पर व्यवसायगत परिस्थितियों को व्यक्त करता है।
- ✓ जीवन स्तर के नवीन आयामों का विकास।
- ✓ यातायात तथा संचार के नवीन साधनों का विकास।
- ✓ सामाजिक समानता तथा न्याय को बढ़ा। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन
- ✓ रहन–सहन के स्तर में परिवर्तन
- ✓ नवीन मूल्यों का विकास
- ✓ जातीय रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास का ह्रास।

आधुनिकीकरण की प्रक्रियायें [38]

1. आर्थिक संरचनात्मक स्तर पर पुरानी पारिवारिक एवं सामुदायिक अंकरणीय अर्थव्यवस्था के स्थान पर यांत्रिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह जजमानी प्रथा जैसी परम्परागत व्यवस्था को तोड़ने के लिए भी उत्तरदायी है।
2. राजनैतिक संरचनात्मक स्तर पर शक्ति संरचना का उन्मूलन करके और उसके स्थान पर जनतांत्रिक शक्ति संरचना की स्थापना करके जो कि आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक होती है।
3. सांस्कृतिक स्तर पर मूल्यों के क्षेत्र में परितर्वन पवित्र मूल्य व्यवस्था से धर्म निरपेक्ष मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन के द्वारा लाया जा रहा है।

4. सामाजिक संरचनात्मक स्तर पर अर्जित प्रस्थिति भूमिका की अपेक्षा परंपरागत पदत्त भूमिका व प्रस्थिति में कमी आयी।

1.15 सारांश

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीयकरण एवं आधुनिकता के परिणाम स्वरूप नगरीय परिवर्तन परम्परागत परिवर्तन से पूर्णतया भिन्न विशेषताओं वाले होते जा रहे हैं जिसमें स्वार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। जिससे परिवार की एकात्मकता धीरे–धीरे कमजोर होने लगी है। इसी प्रकार यदि नगरीय सामाजिक स्तरीकरण की बात करें, तो ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक समाज किसी–न–किसी आधार पर ऊँची या नीची स्थितियों वाले विभिन्न समूहों में विभाजित रहता है। नगरीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। नगरीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण प्रायः आयु, शिक्षा, लिंग, पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यवसाय, सम्पत्ति तथा वर्गों इत्यादि अनेक आधारों पर विभक्त रहता है। जो व्यक्ति की उच्च तथा निम्न प्रस्थिति को भी विभक्त करता है।

इसी प्रकार व्यवसायिक विभाजन के आधार पर प्रत्यके व्यक्ति अपनी योग्यता, रूचि एवं कार्यकुशलता के आधार पर अपने व्यवसाय का चुनाव करता है तथा उसी व्यवसाय के आधार पर अपना सम्पूर्ण जीवन यापन करता है। व्यवसायगत विभाजन व्यक्ति को समाज में प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से एक अलग पहचान तथा प्रस्थिति को स्पष्ट करता है जिससे व्यक्ति में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिलता है तथा व्यक्ति का वर्गगत् विभाजन के साथ–साथ वैचारिक स्वतंत्रता की भावना को भी बढ़वा मिलता है।

1.16 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नगरीय परिवार की विशेषतायें लिखिये?
2. केन्द्रक परिवार किसे कहते हैं
3. सामाजिक स्तरीकरण के प्राणिशास्त्रीय आधार को स्पष्ट करिये।
4. अजातिगत वर्ग आधार किसे कहते हैं?
5. सोरोकिन ने सामाजिक स्तरीकरण के कौन से तीन प्रमुख स्वरूप बताये हैं?
6. नगरीय सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख आधारों की विवेचना कीजिए?

1.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीय परिवार की परिभाषा तथा विशेषताओं को स्पष्ट करिए?
2. नगरीय परिवार की आधुनिक प्रवृत्ति का प्रभाव तथा विघटन के कारणों को स्पष्ट करिए?
3. व्यवसायिक विभाजन के अर्थ तथा परिभाषा को स्पष्ट करिये
4. व्यवसायिक विभाजन का नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण में योगदान को स्पष्ट करिये?
5. भारत में नगरीय सामाजिक स्तरीरण की व्याख्या कीजिए

1.18 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0 257
2. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0 257–258
3. रंजना अग्रवाल, ''शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस'', ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र, 2014, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, पे0नं0258
4. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261
5. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261
6. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 261–262
6. वी0एन0सिंह, जनमेजय सिंह, 'नगरीय समाजशास्त्र, 2005, विवेक प्रकाशन, पे0सं0 42
7. रंजना अग्रवाल, शहरी सामाजिक संरचनाःपरिवार, वर्ग, पड़ोस, (ग्रामीण–नगरीय समाजशास्त्र), 2014, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पे0नं0 264
8. Sutherland And Woodword, Introductory Of Sociology, P 608
9. Earnest R. Mowre:THE FAMILY 1932, 274–275
10. Earnest R. Mowre:THE FAMILY Chicago press, 1932, 274
11. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ0सं0 65–67
12. Folsom, J.K., The Family And The Democratic Society, P 188
13. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, पे0नं0 62
14. राजेन्द्र कुमार शर्मा, नगरीय समाजशास्त्र, 2003, एटलांटिक पब्लिशर्स, पे0नं065–67
15. P.Gisbert, fundamentals of sociology, p. 303
16. Sutherland and woodward:introductory sociology, p 156
17. kingsley devis:human society, p 369
18. R.m.williams:American society, p 91-92
19. Y.Singh:Social Stratification Change In India, P-1
20. शशि के जैन, 'नगरीय समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0सं0 119
21. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 121–124
22. रवीन्द्र नाथ मुखर्जी, सामाजिक विचारधारा (कॉम्ट से मुकर्जी तक), 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 325–327
23. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर,पृ0सं0 124–129
24. रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा,'समाजशास्त्र के सिद्धान्त', 1995, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स', पृ0सं0–304–306
25. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर,पृ0सं0 135
26. jobber, pre industrial cities, p 110
27. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 136
28. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 136–137
29. शशि के जैन, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0सं0 133
30. विद्याभूषण, आर0 सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, किताब महल, पृ0सं0359

31. Lipest And Bendix, Mobility In Industrial Society Berpdy, University Of California Press, 1966
32. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 327––328
33. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 357
34. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, 'सामाजिक विचारधारा, 2009, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 357
35. davis, human society, p 368
36. Johnson, Henry M.Society, P 487.490
37. विरेन्द्र,सिंह, पृ0सं0 254
38. उपरोक्त, पृ0सं0 254–255

इकाई– 2

नगरीय जीवन, ग्रामीण नगरीय सततता (Urban Life, Rural Urban Continuum)

इकाई की रुपरेखा
2.0 उद्देश्य
2.1 परिचय
2.2 नगरीय जीवन
2.3 ग्रामीण–शहरी सततता
2.4 निष्कर्ष
2.5 अभ्यास प्रश्न
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि–

- शहरी जीवन का तात्पर्य क्या है
- ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ क्या है

2.1 परिचय (Introduction)

शहरी जीवन क्या है?**नगरीय** जीवन के बारे में हम क्यों जानना चाहते हैं?**नगरीय** जीवन ग्रामीण जीवन से अलग कैसे है? सामाजिक संबंधों और सामाजिक संस्थानों पर **नगरीय** जीवन का क्या असर होता है? ऐसे कई प्रश्न हैं, जिनके उत्तर प्राप्त करने के लिये **नगरीय** जीवन की गहरी सैद्धांतिक समझ होना आवश्यक है। इस इकाई में हम विभिन्न विचारों के जरिये **नगरीय** जीवन को समझने का प्रयास करेंगे और यह भी जानेंगे कि ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ क्या है।

2.2 नगरीय जीवन (Urban Life)

शहरी माहौल और लोगों के संबंध को पारंपरिक रूप से अधिकतर नकारात्मक तौर पर देखा जाता है।**नगरीय** जीवन के संबंध में जनधारणा और सामाजिक सिद्धांत, जिनमें कई कलाकारों, लेखकों, फिल्मकारों, संगीतकारों आदि की व्याख्याएं भी शामिल होती हैं, अकसर नकारात्मक छवि प्रस्तुत करने की भूल करते हैं। वे अपने विचार पर दृढ़ दिखते हैं और **नगरीय** जीवन की कमियों–बुराइयों पर जोर देते हुये इन्हें **नगरीय** माहौल में निहित खामियों का कारण मानते हैं। यह ध्रुवीकरण **नगरीय** जीवन के संदर्भ में सामाजिक सिद्धांतों में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। समाज विज्ञानियों ने विचित्रता, कृत्रिमता, व्यक्तिदवाद और विभिन्नताओं को **नगरीय** माहौल के बुनियादी तत्वों के तौर पर माना है जो मानव व्यवहार और सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टिकोण ने **नगरीय** सामाजिक भूगोल और समाजशास्त्र तथा अन्य संबंधित सिद्धांतों के अध्ययन पर गंभीर असर डाला है। दुर्खेम, वेबर, सिमेल और टॉनीस जैसे यूरोपियन सामाजिक दार्शनिकों का लेखन इसे बल देता है, जो 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति से संबद्ध शहरीकरण और शहरीवाद के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझने का प्रयास करते हैं। समाज के स्तर और नैतिक व्यवस्था का समन्वय इस समाजशास्त्रीय विश्लेषण का आधारबिंदु

है। असल में तर्क निम्नानुसार चलता है। पूर्व औद्योगिक समाज छोटा था, जिसमें सजातीय आबादी रहा करती थी और सभी लोग एक–दूसरे को जानते–पहचानते थे। वे सभी समान कार्य करते थे और उनके लक्ष्य, अभिरुचियां भी समान थीं। इस सबके चलते वे सभी एकसमान विचार, सोच और व्यवहार करते थे और समान मूल्य और नियम का पालन करते थे।

दूसरी ओर, बड़े नगरों में (जैसाकि दुर्खेम भी बताते हैं) बेहद गतिशील सघन आबादी पायी जाती है जो आर्थिक विशिष्टताओं, परिवहन सुविधाओं के आविष्कार और संचार तकनीकी के परिणामस्वरूप आर्थिक और सामाजिक संगठन का नया स्वरूप बनाते हैं। इस शहरीकृत, औद्योगिक समाज में अधिक से अधिक लोगों से संपर्क तो होता है, लेकिन परिवारों और दोस्तों के साथ बनने वाले प्रगाढ़ प्राथमिक संबंध यहां सतत नहीं रह पाते। इसके अलावा सामाजिक विभिन्नताएं जीवनशैली में बदलाव का कारण बनती हैं, जिसका असर मूल्यों और आकांक्षाओं पर भी पड़ता है। यह सब सामाजिक सहमति और समन्वय को कमजोर करने का कारण बनते हैं और सामाजिक व्यवस्था के लिये चुनौती बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक संगठनों के प्रति तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाया जाता है, ताकि औपचारिक नियंत्रण का प्रसार किया जा सके और जहां यह नाकाम रहता है वहां सामाजिक विघटन तथा विपथगामी व्यवहार में बढ़ोतरी देखी जाती है (Knox and Pinch, 2010).

सैद्धांतिक दृष्टिकोण (Theoretical perspective)

- **मुख्य कार्यात्मक धारणा Major assumptions Functionalism:** नगर समाज से जुड़े कई महत्वपूर्ण कार्यों का निष्पादन करते हैं, लेकिन इनके कई असामान्य पहलू भी सामने आते हैं। सिद्धांतकारों में **नगरीय** जीवन के लाभ और खामियों की विवेचना पर अंतर दिखता है। यह इस पर निर्भर करता है कि नगरों के भीतर सामुदायिक एवं सामाजिक संयोजन किस स्तर का है।
- **संघर्ष या टकराव का सिद्धांत Conflict theory:** नगरों का संचालन राजनीतिक और आर्थिक अभिजात्य वर्ग द्वारा किया जाता है जो संसाधनों का उपयोग अपने स्तर को और बढ़ाने में करते हैं। इसके लिये वे निर्धन और निर्बल, उपेक्षित वर्गों के संसाधनों पर भी अधिकार जमा लेते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि की विभिन्नताएं शहरों में मानकों और मूल्यों के संघर्ष को जन्म देती हैं।
- **प्रतीकात्मक परस्पर किया Symbolic interactionism:** नगरों में रहने वाले लोगों के **नगरीय** जीवन को लेकर अनुभव, विचार और अंतःक्रियाएं अलग–अलग होती हैं। नगर अस्त–व्यस्त स्थान नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे स्थान हैं जहां मजबूत मूल्य और मानक भी अस्तित्वमान हैं।

शहरी जीवन और समुदाय की प्रकृति (Nature of Urban Life and Community)

शहरी और ग्रामीण जीवन के असर का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय लेखन सर्वप्रथम जर्मन समाजशास्त्री फर्डिनेंड टोनिस (1855–1936) ने किया था। टोनिस ने पारंपरिक सामाजिक संबंधों, परिवार, परिजन, मित्र आदि के परस्पर प्रगाढ़ संबंध, नैतिक एकजुटता और धार्मिक संबंधों के महत्व को समझाने के लिये गेमाइनशाफ्ट (Gemeinschaft) शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ समुदाय होता है। इसी तरह उन्होंने गेसेलशाफ्ट (Gesellschaft) शब्द का इस्तेमाल किया, जिसका अर्थ है सहयोग या सहचर्य। इसके तहत उन्होंने सामाजिक संबंधों के व्यक्तिवादी स्वरूप, सामुदायिकता के अभाव, दूसरों से अलग

रहने की इच्छा और अवैयक्तित्व को स्पष्ट किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि गांवों में समुदाय आधारित संबंध पाये जाते हैं, जबकि बड़े नगरों में ये पारंपरिक संबंध छिन्न–भिन्न हो चुके हैं। टोनिस ने इसे समस्यात्मक रुझान माना है।

एक अन्य जर्मन विद्वान जॉर्ज सिमेल (1858-1918) का लेखन भी टोनिस के समकालीन था। सिमेल समूहों के आकार के सामाजिक प्रभावों के अध्ययन में रुचि रखते थे। सिमेल ने भी नगरों का अध्ययन किया और पाया कि वहां लोग बहुत बड़ी संख्या में परस्पर संवाद कायम करते हैं। उनके अनुसार नगरों के रहने वाले लोग नगरीय जीवन के अनुरूप तौर–तरीके विकसित करते हैं। वे संवेदनशीलता की भावना को चंद लोगों तक सीमित कर लेते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप संवेदनाओं के बजाय बौद्धिक व्यवहार करते हैं। चूंकि, नगरों में रहने वाले लोग हर उस व्यक्ति के साथ संपर्क नहीं बना सकते, जिससे वे मिलते हैं। इसके लिये वे अवैयक्तित्व व्यवहार करने लगते हैं, जिसे सिमेल ने विरक्तिपूर्ण बर्ताव (Blais Attitude) कहा है। इस व्यवहार के तहत शहरों में रहने वाले लोग किसी काम को करने से पहले विकल्पों और निर्णयों पर विचार करते हुये परिणामों का अनुमान निकालते हैं। उदाहरण के लिये, वे किसी राहगीर को उसका पूछा पता बताने में अच्छी तरह से मदद कर सकते हैं, लेकिन किसी भिक्षु को मदद करने से सीधे इनकार करते हैं। चयन का यह तरीका स्वार्थी प्रतीत होता है, लेकिन यह उन लोगों को **नगरीय** जीवन की अनेकानेक मांगों से निपटने में सहायता करता है। साथ ही इसके जरिये उन्हें वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी मिलती है, जो पारंपरिक समुदायों में दबी हुयी थी।

सिमेल ने **नगरीय** अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसके लिये उन्होंने शहरीकरण (यानी **नगरीय** क्षेत्रों के विकास) के बजाय शहरीवाद (शहरी क्षेत्रों में जीवन) पर अपनी राय दी। "The Metropolis and Mental Life" निबंध में **नगरीय** जीवन के प्रति उनके विचारों की झलक मिलती है, जिसमें उन्होंने सामाजिक मनोविज्ञान पर और गहराई से काम किया है। नगरों का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि वहां रहने वाले लोगों को बेहद तीव्र तंत्रिका उत्तेजनाओं से गुजरना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गति, ग्रहणशीलता और कल्पनाशीलता धीमी होती है, जबकि **नगरीय** क्षेत्रों में आवाजों, गंधों, दृश्यों में लगातार ताबड़तोड़ बदलाव होता है। सिमेल बताते हैं कि नगरों में रहने वाला व्यक्ति भेदभाव करना सीख जाता है, वह तर्कसंगत और जोड़–तोड़ करने लगता है और उसमें विरक्तिपूर्ण व्यवहार जन्म लेता है। सामाजिक रूप से अलग–थलग रहने वाला यह व्यक्ति दिल के बजाय दिमाग से काम लेता है, वह न तो सामाजिक गतिविधियों में पूरी तरह शामिल होता है, न ही उनकी चिंता करता है। **नगरीय** लोग श्रम विभाजन की आर्थिकी के अभ्यस्त हो जाते हैं और धन के उपयोग के तरीके सीख लेते हैं। नगरों में स्वतंत्रता तो होती है, लेकिन दैनिक दिनचर्या की संकीर्णता की बहुत अधिकता पायी जाती है, व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास के नये आयाम भी मिलते हैं, लेकिन अलगाव की भावना इन सब पर भारी पड़ सकती है।

टोनिस और सिमेल के ही समकालीन फ्रेंच समाजविज्ञानी एमाइल दुर्खेम (1858–1917) ने ग्रामीण और **नगरीय** संबंधों को महत्व दिया। दुर्खेम की रुचि एकजुटता में थी, यानी वह बंधन तत्व जो लोगों के बीच पाया जाता है और उन्हें जोड़े रखता है। उन्होंने महसूस किया कि पारंपरिक समुदायों में सामाजिक बंधनों में यांत्रिक एकजुटता (Mechanical Solidarity) पायी जाती है। टोनिस के गेमाइनशाफ्ट

की ही तरह यांत्रिक एकजुटता भी समानता, साझा मूल्य एवं विश्वास और श्रम के छोटे विभाजन पर निर्भर करती है। यहां व्यक्तिगत अंतर न्यूनतम होते हैं। दुर्खेम ने जैविक एकजुटता (Organic Solidarity) का विचार दिया, जिसमें सामाजिक बंधन विभिन्नताओं और अंतरों पर आधारित होते हैं। औद्योगिक समाजों में श्रम विभाजन और इनसे उपजने वाले नये सामाजिक बंधनों के जरिये यह एकजुटता उभरती है। अपने समकालीनों से इतर बदलते सामाजिक बंधनों के प्रति आशावादी रवैया अपनाते हुये दुर्खेम ने तर्क दिया कि नगरों में व्यक्ति समान चिंताओं के बंधन से कम जुड़ते हैं, लेकिन विशेष भूमिका को निभाते हुये उनमें महत्वपूर्ण, सकारात्मक, अंतर्निर्भरता विकसित होती है।

शहरीवादः जीवन का एक तरीका (Urbanism as a Way of Life)

शहरी समाजशास्त्र से संबंधित और प्रभावी दृष्टिकोण कुछ वर्ष बाद शिकागो में विकसित हुआ, जिसे Wirthian theory of urbanism, as a way of life कहा जाता है। लुईस वर्थ के विचारों में मानवीय पारिस्थितिकी निहित थी, लेकिन निश्चित सिद्धांतों की वह शृंखला उपलब्ध है, जो व्यक्ति और समूह के व्यवहार के लिये भी प्रासंगिक हैं। वर्थ ने**नगरीय** जीवन के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिणामों (यानी शहरीवाद) को स्पष्ट किया। उन्होंने तीन कारकों को शहरीकरण में बढ़ोतरी की वजह माना:

- जनसंख्या का बढ़ता आकार
- जनसंख्या का बढ़ता घनत्व
- जनसंख्या में विभिन्नताएं और विजातीयता का बढ़ावा

शहरीवाद जीवन जीने का एक तरीका है। यह समाज के ऐसे संगठन को प्रदर्शित करता है, जिसके सदस्यों में आर्थिक कार्यों को पूर्ण करने के लिये श्रम, तकनीक के उच्च स्तर, उच्च गतिशीलता, अंतर्निर्भरता पायी जाती है और जो सामाजिक संबंधों के लिहाज से अवैयक्तिक है। लुईस वर्थ ने शहरीवाद के चार लक्षण बताये हैं:

- **भंगुरता (Transiency):** किसीइ **नगरीय** व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबंध बेहद अल्पकालिक होता है। वह अपनी पुरानी जान–पहचान को भूलकर नये लोगों के साथ नये संपर्क–संबंध स्थापित करने में लगा रहता है। चूंकि वह अपने पड़ोसियों, सामाजिक सदस्यों से बहुत अधिक संबद्ध नहीं होता, लिहाजा वह उन्हें छोड़कर जाने में किसी तरह की परेशानी महसूस नहीं करता है।
- **सतहीपन (Superficiality):**नगरीय व्यक्ति का दूसरे लोगों से संवाद और संपर्क बेहद सीमित संख्या में होता है। इन लोगों से भी उसके संबंध अवैयक्तिक और औपचारिक होते हैं। लोग एक–दूसरे से विशिष्ट भूमिकाओं के तौर पर मिलते हैं। वह तभी अधिक लोगों से संपर्क बनाने का प्रयास करते हैं, जब जीवन की आवश्यकताओं के लिये यह जरूरी हो।
- **गुमनामी (Anonymity):**नगरीय लोग एक–दूसरे को कभी गहराई से नहीं जानते हैं। पड़ोसियों के बीच जो सामान्य परिचय और प्रगाढ़ता पायी जाती है, वह **नगरीय** लोगों के बीच नजर नहीं आती है।

- **व्यक्तिवाद (Individualism)**:नगरीय लोग अपने स्वयं के निहित स्वार्थों को अधिक महत्व देते हैं।

वर्थियन सिद्धांत के अनुसार शहरों में सामाजिक जीवन (शहरीवाद) के कुछ प्रमुख लक्षणों में अपराध की बढी दर, बीमारियां, सामाजिक विघटन हैं, जो बेहद बड़े आकार और विजातीय–विविध **नगरीय** जीवन का परिणाम है। समुदायों में मौजूद सामाजिक नेटवर्क पर विचार करते हुये बैरी वेलमैन (1999) बताते हैं कि हमें एसा विशिष्ट सामुदायिक संबंध हासिल है, जो हमें विभिन्न संसाधनों तक पहुंच देता है। हम चाहें तो उसी स्थान पर रह सकते हैं, जहां हमें रोजगार मिलता है या फिर किसी ऐसे स्थान पर रह सकते हैं, जहां से हमें कार्यस्थल तक परिवहन सुविधा मिल रही हो। या फिर हम ऐसा स्थान चुन सकते हैं, जहां से हमारे बच्चों के लिये स्कूल और शिक्षा की सुविधाएं नजदीक हों। ये सभी संसाधन हमारे सामाजिक नेटवर्क में उपलब्ध होते हैं। वेलमैन के अनुसार हमें बिखरा हुआ नेटवर्क उपलब्ध है, जो निरंतर बदलता रहता है। शहरीकरण के इस दौर में हमारे अधिकतर नेटवर्क छिन्न–भिन्न हो चुके हैं। लोग अपने पड़ोसियों में भी बेहद कम को जानते हैं और अपने प्रतिवेश के बाहर लोगों से संबंध बनाये रखते हैं। हालांकि, लोग अब भी सहयोगी–समन्वयकारी नेटवर्क बनाने की कोशिश करते हैं, चाहे वे एक–दूसरे से दूर ही क्यों न रह रहे हों। दोस्तों को अपने घर पर बुलाना, क्लब मीटिंग में शामिल होना इसके उदाहरण हैं। इसके अलावा लोग नियमित रूप से खरीदारी, मनोरंजन गतिविधियों से दूसरे प्रतिवेशों में जाते हैं।

शहरी माहौल में सामाजिक संवाद (Social Interaction in Urban Environments)

शहरी जीवन को समझने के लिये **नगरीय** प्रतिवेश को समझना आवश्यक है। यह व्यक्तियों के बीच प्राथमिक और द्वितीयक संबंधों को निर्धारित करता है। यह पाया गया है कि व्यक्तिगत गतिशीलता आधुनिक नगरीय नियोजन और सामाजिक मूल्यों का परिणाम है। उदाहरण के लिये कॉलिन वार्ड बताते हैं कि आधुनिक आवासीय इस्टेट ने सामुदायिक भावनाओं को नष्ट कर दिया है और सामाजिक व्यवस्था के बजाय अभिभावकीय अधिकार को विकसित किया है, जिसमें माता–पिता बच्चों की बाहरी गतिविधियों को नियंत्रित, प्रतिबंधित करते हैं। इसके चलते व्यक्ति के जीवन में पहले की तरह स्थानीयता के आधार पर होने वाली दोस्ती का विकास बंद हो गया है। (Ward, 1978). इसी तरह सुसैन केलर बताती हैं कि अमेरिका में आर्थिक संगठनों और सामाजिक मूल्यों में बदलाव के चलते संगठित और स्वाभाविक प्रतिवेश यानी पड़ोसियों से संबंध में लगातार गिरावट आयी है। वह इसके चार प्रमुख कारक बताती हैं:

- मास मीडिया, यात्रा, स्वयंसेवी संगठनों समेत सूचनाओं और विचाारों के अत्यधिक स्रोत तथा स्थानीय क्षेत्र के बाहर रोजगार
- स्थानीय सीमाओं के बाहर बेहतर परिवहन सुविधाएं
- लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं में विभिन्नताओं की बढ़ोतरी और यह अंतर पड़ोसियों से संवाद को कम करने की ओर झुकाव बढ़ाता है
- बेहतर सामाजिक सेवाएं और आर्थिक सुरक्षा

इन तर्कों के बीच हमें यह भी देखना होगा कि आवासीय प्रतिवेश आज भी सामाजिक जीवन को बढ़ावा देने का माध्यम है, विशेषतः अगतिशील समूहों (निर्धन, बुजुर्ग, महिलाएं, छोटे बच्चे आदि)। यहां तक कि

अधिक गतिशील वर्ग भी स्थानीय संवाद और संबंधों को लेकर संवेदनशील हो सकते हैं। अधिकतर लोग परस्पर सुरक्षा और ऐसे ही अन्य बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये पड़ोसियों से संपर्क और संबंध रखते हैं।

शहरी निवासियों के प्रकार (Types of Urban Residents)

प्रतीकात्मक संवाद की परंपरा **नगरीय** निवासियों की विभिन्न जीवनशैलियों को समझने की कोशिश करती है। समाजशास्त्री हरबर्ट गैन्स (1982) ने एक **नगरीय** निवासियों का वर्गीकरण किया, जिसमें उनकी अलग–अलग जीवनशैलियों और अनुभवों को आधार बनाया गया। गैन्स ने पांच प्रकार बताये हैं। पहला है, सार्वलौकिक या बहुलसांस्कृतिक। ये वे लोग हैं जो किसी नगर के सांस्कृतिक आकर्षण, रेस्टोरेंट और अन्य बेहतरीन सुविधाओं के चलते यहां रहते हैं। इनमें छात्र, लेखक, संगीतकार और अन्य बुद्धिजीवी शामिल हैं। अविवाहित और संतानविहीन दंपतियां अगला प्रकार है जो अपने कार्यस्थल के नजदीक होने के कारण नगरों में रहते हैं और नगरों में उपलब्ध मनोरंजनात्मक सुविधाओं का लाभ लेते हैं। शादी करने या संतानोत्पत्ति के बाद वे परिवार के साथ उपनगरीय इलाकों की ओर चले जाते हैं। तीसरा प्रकार है पारंपरिक ग्रामीणों का, जो विभिन्न पारंपरिक समूहों में निश्चित पड़ोसियों के साथ रहते आये हैं और हाल में पलायन कर नगरों में पहुंचे हैं। गैन्स के अनुसार इन तीनों प्रकार के लोगों को नगरों में अवसर नजर आते हैं और अलगाव के भाव से इतर नगरों को लेकर उनके अनुभव सकारात्मक रहते हैं।

लेकिन, दो अंतिम प्रकार के निवासी वे हैं जो नगरों में अलगाव की भावना महसूस करते हैं और बेहद निम्न गुणवत्ता का जीवन जीते हैं। इनमें पहला है वंचित समूह। ये वो लोग हैं जो औपचारिक शिक्षा के निम्न स्तर तक पहुंच पाते हैं, निर्धनता में या लगभग निर्धनता में रहते हैं और बेरोजगारी से जूझ रहे होते हैं या बेहद निम्नतम श्रममूल्य पर काम करते हैं। वे जिन क्षेत्रों में रहते हैं, वे अव्यवस्थित होते हैं या वहां कचरे के ढेर होते हैं। ऐसे लोग अपराधों में संलिप्त होते हैं और अपराधों से पीड़ित होने की सर्वाधिक दर भी इन लोगों में ही पायी जाती है। अंतिम प्रकार है फंसे हुये लोग। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है कि ये ऐसे लोग हैं, जो अपने प्रतिवेश को छोड़कर जाना चाहते हैं, लेकिन विभिन्न कारणों से ऐसा करने में सक्षम नहीं हो पाते। ये शराबी या नशे के आदी हो सकते हैं या फिर बुजुर्ग अथवा दिव्यांग, बेरोजगार होने के कारण वे बेहतर क्षेत्र में जा नहीं सकते।

इस वर्गीकरण पर विचार के दौरान यह ध्यान में रखना जरूरी है कि **नगरीय** निवासियों की सामाजिक पृष्ठभूमि (सामाजिक वर्ग, जाति, परंपरा, लिंग, आयु आदि) उन्हें किसी जीवनशैली और निवास के प्रकार को अपनाने के लिये बाध्य करती है। हमारी सामाजिक पृष्ठभूमि कई तरह की सामाजिक असमानताओं को जन्म देती है और हमारे जीवन की गुणवत्ता व स्तर अकसर इन्हीं आयामों के इर्द–गिर्द घूमता है। उदाहरण के लिये, श्वेत और समृद्ध लोग, जिनके पास धन की अधिकता है, वे नगरों में उपलब्ध श्रेष्ठ संसाधनों का आनंद लेते हैं, जबकि अश्वेत और निर्धन लोगों को नगरीय जीवन का निम्नतम अनुभव झेलना होता है। इसी तरह दुष्कर्म और यौन शोषण जैसे अपराधों के डर से महिलाएं पुरुषों के मुकाबले रात को निकलने से बचती हैं। बुजुर्ग लोग शारीरिक बाधाओं के चलते डकैती को लेकर आशंकित रहते हैं। वहीं, समलैंगिक लोगों को सामाजिक बहिष्कार और कई बार हिंसा का भी शिकार बनना पड़ता है।

इस प्रकार यह हमारे सामाजिक–जनसांख्यिकीय विशेषताओं पर निर्भर करता है कि नगरों और नगरीय जीवन को लेकर हमारे अनुभव सकारात्मक होंगे अथवा नकारात्मक।

2.3 ग्रामीण–शहरी सततता (Rural-Urban Continuum)

ग्रामीण–शहरी सततता की अवधारणा अमेरिकी मानवविज्ञानी रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा मेक्सिको के नगर टेपोज्लेन के अध्ययन पर आधारित है। अपने अध्ययन में उन्होंने पारंपरिक लोकसमाज और **नगरीय** समाज को स्पष्ट किया। उनका विचार है कि ऐसा कोई स्पष्ट बिन्दु नहीं है जो ग्रामीण और **नगरीय** अंतरों को पूरी तरह स्पष्ट कर सके। वह बताते हैं कि शहरीकरण की बेहद तेज रफ्तार, **नगरीय** सुविधाओं और विशेषताओं ने नगरों और गांवों के अंतर को कम किया है। कुछ समाजशास्त्री शहरी–ग्रामीण को द्विभाजन (dichotomous) के तौर पर देखते हैं। वे विभिन्न स्तरों, जैसे– व्यवसाय, पर्यावरण, समुदायों के आकार, जनसंख्या घनत्व, सामाजिक गतिशीलता के आधार पर विभिन्न स्तरों पर दोनों का अंतर स्पष्ट करते हैं और इस तरह ग्रामीण–शहरी सततता को ऐसे गतिशीलता के संतुलन के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है, जहां विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण और **नगरीय** दोनों तरह की आबादी को शामिल किया जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास का प्रसार लोगों के हर वर्ग तक होने से बदलाव औद्योगिक **नगरीय** केन्द्रों से गांवों की ओर होने लगता है, जो शहरी–ग्रामीण सततता का परिचायक बनता है। **नगरीय** और ग्रामीण समुदायों के संबंध में तीसरा विचार पोकॉक का है, जो मानते हैं कि गांव और शहर दोनों ही समान सभ्यता का हिस्सा हैं ऐसे में न तो शहरी–ग्रामीण विभाजन और न ही शहरी–ग्रामीण सततता अर्थपूर्ण हैं। एमएसए राव भारतीय संदर्भ में स्पष्ट करते हैं कि पूर्व ब्रिटिशकाल में भले ही गांवों से कस्बों का विकास होता गया, जिनमें परिवार, जाति व्यवस्था भी मौजूद थी, लेकिन इन कस्बों में भी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियां उसी तरह संचालित होती थीं, जैसेकि गांवों में। इस प्रकार राव मानते हैं कि शहरी–ग्रामीण सततता अर्थपूर्ण है।

ग्रामीण–शहरी सततता का अर्थ (Meaning of Rural-Urban Continuum)

परंपरागत रूप से ग्रामीण–शहरी सततता ग्रामीण और **नगरीय** व्यवस्थाओं के सामाजिक संबंधों की परस्पर विरोधी प्रकृतियों का रैखिक चित्रण करती है। यह समुदायों के विभिन्न प्रकारों को वर्गीकृत करने और उनके परिवर्तन को समझने की अवधारणा है। 20वीं सदी के प्रारंभ से समाजशास्त्र ने शहरीकरण की तेज रफ्तार के परिणामस्वरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन छोटे, भौगोलिक रूप से अलग–थलग क्षेत्र में मिलता है, जहां सामाजिक सजातीयता, परस्पर संचार का उच्चस्तर और सामाजिक एकजुटता पायी जाती है और जो बहुत धीमी गति से बदलते हैं। यह कहना बेहद कठिन है कि गांव की सीमा कहां समाप्त होती है या कहां से शुरू होती है। मैक्लेवर के अनुसार भले ही समुदाय अब भी सामान्यतः ग्रामीण और **नगरीय** में विभाजित हों, लेकिन उनके बीच की विभाजन रेखा हमेशा स्पष्ट नहीं होती है। ऐसा कोई पैमाना, मानक या रेखा नहीं है जो बता सके कि कहां शहर खत्म हो गया और कहां से गांव प्रारंभ हुआ। हर गांव में शहर के कुछ तत्व मौजूद रहते है, इसी तरह हर शहर अपने भीतर गांवों के कुछ गुणों को लेकर चलता है।

सततता एवं अमीरी से गरीबी की ओर धनप्रवाह (Rural-Urban Continuum and 'Trickle Down' Effect)

रामचंद्रन के अनुसार आबादी और बसावत का बुनियादी सामान्यीकरण यह है कि किसी देश या क्षेत्र में आबादी के आकार और संख्या में विपरीत संबंध होता है। सामाजिक ढांचे के शब्दों में कहें तो छोटी और बड़ी आबादी या बसावत के बीच कोई विशेष अंतर नहीं होता है। भारत में आज भी गांव और शहर भी, धार्मिक, पारंपरिक, भाषायी, जाति–वर्ण आदि के आधार पर पहचाने जाते हैं। परिवारों के आकार और उनके प्रकार (एकल, संयुक्त आदि) भी शहरों में गांवों के समान ही होते हैं। किसी परिवार में बच्चों की संख्या या परिवार का आकार नगरों या गांवों में अलग नहीं होता है। पाइपों के जरिये पेयजल वितरण, सीवेज, कचरा निस्तारण आज भी भारत के कई शहरों में बड़ी आबादी को उपलब्ध नहीं हैं और इसके चलते वे शहरों में रहकर भी गांवों के लोगों से बदतर जीवन जीते हैं। झोपड़ियां और बस्तियां आज भी भारतीय शहरों का उसी तरह हिस्सा हैं, जैसे वे गांवों का थीं। शहरों का बड़ा हिस्सा इन झुग्गी–झोपड़ियों वाली बस्तियों से घिरा हुआ रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या उतनी ही है, जितनी शहरों में। इतना ही नहीं, शहरों में बस्तियों के आकार और संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार आबादी को दो श्रेणियों में बांटकर देखना एकपक्षीय है, क्योंकि दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन है ही नहीं। लेकिन, यह जरूर दावा किया जा सकता है कि स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं होने के बावजूद आबादी और बसावत सततता से जुड़ जाते हैं।

विकसित पश्चिमी देशों में शहरी–ग्रामीण विषमताएं समाप्त हो चुकी हैं। 80 प्रतिशत से अधिक आबादी शहरों में रहती है, जबकि 20 फीसदी आबादी फार्महाउसों और बस्तियों में रहती है। यहां यह दिलचस्प है कि गांवों में रह रही आबादी में से अधिकतर कृषि कार्य नहीं करते हैं। कुल श्रमबल का महज पांच फीसदी ही कृषि करता है। इतना ही नहीं, अलग–थलग फार्महाउस होने के बावजूद उनके पास सभी आधुनिक सुविधाएं, जैसे पाइपलाइनों से पेयजल वितरण, टेलीफोन, बिजली आदि उपलब्ध हैं। (Ramachandran, R. 2013. Urbanization and Urban Systems in India. New Delhi: Oxford University Press) परिवहन सुविधाएं इन लोगों को शहरों तक आसानी से पहुंचा देती हैं। वहीं, भारत में इन सब सुविधाओं का अभाव ग्रामीण और **नगरीय** दोनों क्षेत्रों में अब भी बना हुआ है।

उपरोक्त तर्कों और साक्ष्यों के बावजूद शहरी–ग्रामीण सततता का समर्थन करना पारंपरिक रूप से नगरों को गांवों से अलग मानने की तरह है। ऐतिहासिक पहलू पर नजर डालें तो नगरों का विकास करीब पांच हजार साल पूर्व मानव जीवन में आये बदलावों के बाद शुरू हुआ। उस दौर में अधिकतर आबादी कृषि कार्यों में लिप्त थी और बेहद छोटे, सीमित आकार वाली बसावतों में रहा करती थी। दूसरी ओर, नगरों में बेहद कम संख्या में लोग रहा करते थे। ये लोग खेती के बजाय शिल्प, उद्योग, शिक्षण, उपचार, सैनिक, प्रशासनिक, धार्मिक कार्यों से जुड़े होते थे या फिर शासक होते थे। उस वक्त **नगरीय** केन्द्रों की विशेषताएं ग्रामीण क्षेत्रों से अलग हुआ करती थीं। नगरों में बड़े–बड़े भवन, स्मारक, व्यस्त बाजार और कई तरह के संस्थान हुआ करते थे। नगरों में विजातीय लोगों की बहुतायत होती थी, जो विभिन्न गांवों, देशों या क्षेत्रों से वहां बसते थे। गांवों में इस तरह की कोई विजातीयता नहीं पायी जाती थी। गांवों में लोग एक दूसरे को भली–भांति जानते थे, जबकि नगरों में लोग शायद ही अपने पड़ोसी को भी जानते हों। नगरों में लोगों के संबंधों का नियमन नये तरह के मूल्यों–मानकों से होने लगा।

नगरीय मूल्य व्यवस्था में धर्मनिरपेक्ष और उदारवादी व्यवहार पर जोर दिया गया। इसके अलावा शहरों में भौतिकवादी लक्ष्यों व धन कमाने की इच्छा मुख्य भाव होती थी। परिवहन सुविधाओं, रेलवे ने नगरों को गांवों से और अधिक अलग बनाने में मदद की। विशेष रूप से शहर आकार में विस्तृत हुये और आबादी बढ़ती गयी। लाखों लोग कुछ वर्ग किलोमीटर के ही दायरे में रहने लगे।

रर्बनाइजेशन (Rurbanization)

'रर्बनाइजेशन' भी वह प्रक्रिया है जो शहरी–ग्रामीण सततता में योगदान करती है। गैल्पिन पहले विद्वान थे, जिन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल किया। उनके अनुसार ग्राम्य और **नगरीय** लोगों का संबंध यह है कि गांवों में शहरीकरण और शहरों में ग्राम्यीकरण हो। इस तरह रर्बनाइजेशन ग्रामीण रूपांतरण की प्रक्रिया है। यद्यपि **नगरीय** नियोजकों ने अब तक इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है, लेकिन विकासशील देशों में यह प्रमुख विकास प्रक्रिया है। ऐसे कई कारक और घटनाक्रम हैं जो शहरी–ग्रामीण सततता को रर्बनाइजेशन के तहत बढ़ावा देते हैं, जैसे–**नगरीय** प्रसार, उपनगरीकरण आदि। कई विकसित देशों में **नगरीय** विस्तार आसपास के सारे ग्रामीण क्षेत्रों को समाहित करने के साथ ग्रामीण जीवन के रूपांतरण का कारण बनता है। गतिशील नगरों के परिधीय इलाकों में भी इसका असर देखा जा सकता है। इसे नवग्रामीणता या रर्बनाइजेशन नाम दिया गया है जो पूर्ववर्ती विकास के केन्द्रीय मॉडल से अलग है और नये वैश्विक व्यवस्था को वर्णित करती है। कई आर्थिक गतिविधियों के लिये भी ग्रामीण क्षेत्र विशेष बने हैं, जैसे– पर्यटन, पार्क और अन्य विकास क्षेत्र, ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक नेटवर्क की स्थापना आदि। ये सभी बिन्दु ग्रामीण क्षेत्रों को लेकर नये दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं। उपनगरों में भी शहरों की सभी विशेषताएं मिलती हैं। किसी बड़े नगर के बाहर बसे कस्बों को उपनगर कहा जाता है, जैसे मुंबई के पास अंधेरी और दिल्ली के पास फरीदाबाद। अब लोगों को भी यह बताने में अच्छा लगता है कि वे उपनगरीय इलाकों में रहते हैं। इस तरह किसी उपनगरीय इलाके में नगरीय और ग्रामीण प्रभाव एक–दूसरे पर असर डालते हैं और शहरी–ग्रामीण सततता को बढ़ावा देते हैं।

ग्रामीण–शहरी सततता में आवासीय ढांचा (Housing Patterns in City cum Rural-Urban Continuum)

नगरों में लोग कहां और कैसे रहेंगे, यह सवाल भी सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान के आधार पर देखा जाता है। दुनियाभर के नगरों में अधिकतर आवासीय क्षेत्र अकसर वर्ग, जाति, परंपरा, धर्म और इसी तरह के अन्य मानकों के आधार पर तय किये जाते हैं। विभिन्न पहचानों के बीच का तनाव इस तरह के विभाजक ढांचे की वजह बनता है। उदाहरण के लिये भारत में दो धार्मिक समुदायों के बीच का सांप्रदायिक तनाव मिश्रित प्रतिवेश के पूरी तरह किसी एक समुदाय में बदलने की वजह बनता है। यह फिर से सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देता है जो दोबारा पृथक्कीकरण का कारण बनता है। चहारदीवारी के समुदाय दुनियाभर की तरह भारत में भी पाये जाते हैं। यह साफ करता है कि आसपास का प्रतिवेश इन लोगों की चहारदीवारी और गेटों से अलग किया गया है और इस समुदाय में प्रवेश तथा निकासी के रास्ते तय हैं। ऐसे अधिकतर समुदायों में अपनी समानांतर पेयजल, बिजली, सुरक्षा व्यवस्था रहती है। इसी तरह चंडीगढ़ में अग्रवाल भवन, सैनी भवन, महाजन भवन, परशुराम भवन, कश्मीरी भवन, जाट भवन आदि मिलते हैं। यह और कुछ नहीं, शहरों में अपनी पारंपरिक पहचान कायम रखने का प्रयास है।

2.4 निष्कर्ष (Conclusion)

ग्रामीण–शहरी सततता को और आसान तरीके से ऐसे समझा जा सकता है कि यह लोक (folk) की निरंतरता और **नगरीय** व ग्रामीण समाज का संगठन है। शहरीकरण की तेजरफ्तार,**नगरीय** क्षेत्रों से सटे गांवों में नये तकनीकी रूप से विकसित उद्योगो की स्थापना ने ग्रामीण जीवन पर बड़ा असर डाला है। आधुनिक औद्योगिक विशेषताओं से ग्रामीण जीवन और **नगरीय** जीवन का अंतर लगातार घट गया है। इसीलिये इन दोनों के बीच विभाजन की कोई रेखा अब स्पष्ट नजर नहीं आती है। ग्रामीण और **नगरीय** दोनों समाजों के मिश्रण के चिह्न साफ दिखते हैं। भारत में बीते तीन दशकों में परिवहन और संचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। परिवहन और संचार सुविधाएं न सिर्फ बेहतर हुयी हैं, बल्कि दूरस्थ जनजातीय, ग्रामीण क्षेत्रों तक इनका विस्तार हुआ है। इसके चलते ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की शहरों तक पहुंच बढ़ी है और वे रोजगार की तलाश में शहरों में आने लगे हैं।

2.5 अभ्यास प्रश्न (Model Question)

- विभिन्न समाजविज्ञानियों के विचारों के अनुरूप **नगरीय** जीवन की व्याख्या करें।
- ग्रामीण–शहरी सततता से आप क्या समझते हैं?
- रर्बनाइजेशन का क्या अर्थ है?

2.6: सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

- Butler, E.W. (1976). Urban Sociology. New York: Harper and Row, Publishers.
- Knox, P and Pinch, S. (2010). Urban Social Geography. 6thed. New Delhi:
- Pearson. Paddison, Ronanan. (2001). Handbook of Urban Studies. New Delhi: Sage Publications.
- Ramachandran, R. (1997). Urbanization and Urban Systems in India. 1st ed. New Delhi: Oxford University Press.
- Redfield, R. (1930). Tepoztlan a Mexican Village: A Study of Folk Life.Chicago: Chicago University Press.
- Stolley, Kathy.S. (2005). The Basics of Sociology. London: Greenwood Press.

इकाई– 3

नगरीकरण के सिद्धांत (Theories of Urbanism)

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1परिचय

3.2 प्रमुख सिद्धांत

3.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता

3.2.2 नवीकृत

3.3.3 नेटवर्क

3.3 निष्कर्ष

3.4 अभ्यास प्रश्न

3.5 सहायक अध्ययन

3.0 उद्देश्य (Objective)

इस अध्ययन के बाद हम इन बातों से परिचित हो सकेंगेः

1. नगरीकरण के कुछ प्रमुख सिद्धांत
2. संबंधित क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक पहलू

3.2 परिचय (Introduction)

नगरीकरण (Urbanization) और शहरीवाद(Urbanism) वे दो महत्वपूर्ण केन्द्र हैं, जिन पर शहरी सामाजिक सिद्धांत टिके होते हैं और नगरों के विकास का रास्ता तय करते हैं। नगरों के अध्ययन की

जरूरत दो अहम विचारों से सामने आयी है। पहला यह कि शुरुआत में नगरीकरण को न सिर्फ सामंतवादी व्यवस्था के समापन बल्कि तीसरी दुनिया के उद्भव के चलते आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सूचक (Index) के तौर पर देखा गया। और दूसरा यह कि शहरी अध्ययन सभ्यता से गहराई से जुड़ा हुआ है। यहां नगरीकरण को किसी नगर में रहने वाले लोगों की संस्कृति के तौर पर ही नहीं देखा जाता है, बल्कि सामान्य रूप से यह एक सामाजिक विस्तार है जो मनोदशा में भी अवस्थित होता है। (Chandavarkar , 2009). यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो स्थित द शिकागो स्कूल ने समाजशास्त्रियों का एक समूह गठित किया था, जिन्होंने शिकागो नगर के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया और पाया कि नगर दरअसल एक सामाजिक प्रयोगशाला (Social Laboratory) हैं, जहां मानव की वास्तविक प्रवृत्ति उभरकर सामने आती है एवं अस्तित्व का विकास करती है। रॉबर्ट एजरा पार्क, अर्नेस्ट बर्गीज, लुईस वर्थ शिकागो स्कूल के प्रख्यात शहरी विशेषज्ञ रहे, जिन्होंने शहर के विभिन्न कार्यों, उद्देश्यों, इसकी प्रकृति–प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। पुस्तक ***"The City: Suggestions for Investigation of Human Behaviour in the Urban Environment",*** के प्रकाशन के साथ शहरी घटनाक्रमों को समझने की शुरुआत हुई और इसके साथ ही इस विचार को आगे बढ़ाने के लिये विशेष स्कूल की स्थापना की भी जरूरत महसूस की गयी (Dear,2005). अभूतपूर्व एवं त्वरित रूप से विकसित होते शहर के रूप में शिकागो नगर शिकागो स्कूल के लिये आधुनिक शहरी विकास के पहलुओं को समझने और परीक्षण करने का माध्यम बना। जैसाकि उस वक्त प्रचलित था, शिकागो स्कूल ने समग्र एवं संयुक्त रूप में नगर का आधुनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। स्कूल ने उन शहरी घटनाक्रमों और परिस्थितियों पर अध्ययन किया, जो नगरीय संस्कृति के विकास का जरिया थीं। माइकल डियर (2002) शिकागो स्कूल के विशेषज्ञों के बारे में लिखते हैं, 'उनका अध्ययन मूलतः शहरी लोगों के आत्मवाद (Subjectivity) पर आधारित था, जिसमें स्थानीय संस्कृति, अपराध, निर्धनता, जातिवाद भी समाविष्ट किये गये।' स्कूल ने कई विचार दिये जो नगर के समग्र परिदृश्य को स्पष्ट करते थे और जिनकी मदद से शहरी सामाजिक क्षेत्रों तथा शहरी जीवन के तरीकों के विकास व इन्हें समझने के लिये जरूरी अवधारणा की बुनियाद मिली।

रॉबर्ट ई पार्क ने सबसे पहले मानवीय पारिस्थितिकी (Human Ecology) शब्द का इस्तेमाल किया, जिसका तात्पर्य सामाजिक क्षेत्र में जैविक प्रक्रियाओं और अवधारणाओं को लागू करने से था और इससे यह विचार विकसित हुआ कि शहर और शहरी जीवन दरअसल प्राकृतिक दुनिया की प्रतिस्पर्धा का परिणाम हैं। शिकागो स्कूल ने नगरों के ढांचागत स्वरूप और इस ढांचे में मानव समुदाय के समायोजन (Adjustment) के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। शहरी समाजशास्त्र की अवधारणा का विकास शिकागो स्कूल में वर्ष 1914 में पार्क के जुड़ने और बर्गीज के साथ उनके संयुक्त कार्यों से हुआ। इन दोनों ने ही नगर के सामाजिक शोध की प्रयोगशाला होने का विचार सबसे पहले दिया था। 20वीं सदी के पहले दशक में हेंडरसन ने नगरों के व्यवस्थित अध्ययन के लिये फंड की व्यवस्था की, जिसके बाद थॉमस ने वर्ष 1908 में यूरोप और अमेरिका में पोलिश किसानों (The Polish Peasants) पर अपना शोध कार्य प्रारंभ किया। अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी के 1902 में प्रस्तुत एक जर्नल में कहा गयाः

'शिकागो नगर दुनिया की सबसे संपूर्ण सामाजिक प्रयोगशालाओं में से एक है। यद्यपि समाजशास्त्र के तत्वों का अध्ययन छोटे समुदायों से भी किया जा सकता है, लेकिन आधुनिक समाज की गंभीर समस्याओं का प्रतिनिधित्व बड़े शहर ही करते हैं और इनका अध्ययन इसलिये अत्यावश्यक है कि बहुत बड़ी आबादी हर रोज इन समस्याओं से जूझती है। मौजूदा दौर में दुनिया का कोई शहर सामाजिक समस्याओं को उतना परिलक्षित नहीं करता, जितना कि शिकागो नगर।'

समाजशास्त्र को विज्ञान के स्वरूप में स्थापित करने के लिये शोधकर्ताओं, शिक्षकों ने अनुभव आधारित शोध पर ध्यान केन्द्रित किया, जिसमें उन्होंने मात्रात्मक (Quantitative) और गुणवत्तात्मक (Qualitative) तरीकों का इस्तेमाल किया। पार्क ने बिल्कुल नया सैद्धांतिक मॉडल पेश किया, जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर बताया कि नगर सिर्फ भौगोलिक परिस्थितियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय पारिस्थितिकी की मूल अवधारणा प्रकृति विज्ञान पर आधारित हैं। प्रतिस्पर्धा और विभाजन प्राकृतिक क्षेत्रों के अद्वितीय, भिन्न एवं सीमांकित गठन का आधार बनते हैं। 'शहर, दरअसल छोटी–छोटी दुनियाओं का एक समूह है, जो एक–दूसरे को छूते जरूर हैं, लेकिन एक–दूसरे में समाहित नहीं होते।' (Park, 1977). शहरों के विकास को लेकर बर्गीज ने सघन क्षेत्र सिद्धांत (Concentric Zone Theory) पेश किया। इसमें उन्होंने सेंट्रल बिजनेस डिस्ट्रिक्ट (CBD) की अवधारणा दी, जिसके चारों ओर उन्होंने कामकाजी लोगों के आवास, आवासीय क्षेत्र, परिवर्तनशील क्षेत्र आदि के अवस्थित होने का मॉडल दिया। रॉड्रिक मॅकेंजी ने बाद में महानगरीय समुदायों का अध्ययन करते हुए मानव पारिस्थितिकी के बुनियादी सिद्धांत को और आगे बढ़ाया। शिकागो स्कूल का शोध एवं प्रकाशन कार्यक्रम का जिम्मा स्थानीय समुदाय शोध समिति, शिक्षकों व समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान (चार्ल्स मरियम) व मानवविज्ञान (रॉबर्ट रेडफील्ड) विषय के छात्रों के समूह पर था। लॉरा स्पेलमैन रॉकफेलर मेमोरियल ने वर्ष 1924 से 1934 तक शिकागो स्कूल को छह लाख डॉलर से अधिक की मदद दी। इस दौरान बर्गीज एवं पार्क के मार्गदर्शन में स्कूल के छात्रों ने स्थानीय सामुदायिक क्षेत्रों की मैपिंग के अलावा वहां नगर में बाल अपराध, पारिवारिक अव्यवस्थाओं, सांस्कृतिक जीवन आदि पहलुओं पर शोध किये। इन शोध कार्यक्रमों ने अध्ययन के विविध पहलुओं को विभिन्न शहरी संस्थानों (होटल, डांस हॉल आदि), सामाजिक अव्यवस्थाओं (बाल अपराध, आवासहीन लोग आदि) और प्राकृतिक क्षेत्रों पर व्यवस्थित तरीके से केन्द्रित किया। शिकागो स्कूल के कुछ उल्लेखनीय अध्ययनों में फ्रेडरिक थ्रेशर, The Gang (1926); लुईस वर्थ, The Ghetto (1928); हार्वे डब्ल्यू जोरबॉ, The Gold Coast and the Slum (1929); क्लिफोर्ड एस शॉ, The Jackroller (1930); ई फ्रैंकलिन फ्रेजर, The Negro Family in Chicago (1932); पॉल जी केसी, The Taxi Dance Hall (1932); वॉल्टर सी रेकल्स, Vice in Chicago (1933) शामिल हैं।

जानने योग्य तथ्य

20वीं सदी के प्रारंभिक आधे समय तक शिकागो स्कूल समाजशास्त्र एवं शहरी समाजशास्त्र के क्षेत्र में अगुआ रहा। 1950 तक दो सौ छात्र यहां से शोधकार्य कर चुके थे। इनमें से अधिकतर ने देशभर में समाजशास्त्र के अध्ययन को विस्तार दिया। अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन के आधे से अधिक अध्यक्ष भी शिकागो के छात्र अथवा शिक्षक रह चुके थे। 1895 में बेहद छोटे स्वरूप में प्रारंभ हुआ द अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी 1906 से 1935 तक द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन का आधिकारिक जर्नल रहा। शिकागो स्कूल के एकाधिकार एवं प्रभुत्व ने 1935 के वार्षिक सम्मेलन में विरोध के स्वरों को मुखर किया, जिसका परिणाम एक नये जर्नल द अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू के तौर पर सामने आया। इसके बाद से शिकागो के प्रभुत्व में उतार आता गया।

शिकागो स्कूल के कार्यों के कई आलोचक भी रहे। मीसा अलिहान (1938) ने पार्क के मानवीय पारिस्थितिकी मॉडल में अंतर्निहित नियतिवाद (यानी यह धारणा कि मनुष्य किसी भी कार्य को करने के लिये स्वतंत्र नहीं होता) की आलोचना की, स्वयं पार्क ने भी लिखा है कि समग्रता में यह आलोचना सही थी। मौरिस डेवी ने 1938 में क्लिफोर्ड शॉ के आपराधिक क्षेत्रों पर 1929 में किये शोधकार्य के आंकड़ों का पुनर्विश्लेषण किया और पाया कि संबंधित क्षेत्र भौतिक रूप से अपमानकों वाले थे और यहां शरणार्थी आबादी की बहुतायत थी, लेकिन शिकागो स्कूल के सघन क्षेत्र मॉडल में इन बिंदुओं को शामिल नहीं किया गया था। बर्गीज का सघन क्षेत्र मॉडल भी जल्द ही बहुल केन्द्र, विकेन्द्रीकरण के मॉडलों से पुनर्स्थापित किया गया। अब भी शहरी पारिस्थितिकी (Urban Ecology) का मॉडल शहरी समाजशास्त्रियों के मध्य सबसे अधिक प्रचलित है।

हालिया शोधकार्यों में लैंगिक समानता के मसले पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, जिसमें शिकागो स्कूल में भी महिलाओं की भूमिका को उभारा गया है। डीगेन (1986) का तर्क है कि शिकागो स्कूल में पार्क और अन्य पुरुष शिक्षकों ने महिलाओं के योगदान को हाशिये पर रखा। जेन एडम्स ने हल हाउस (Hull House) में प्रारंभिक समुदायों का अध्ययन किया। एडिथ एबॉट विभाग में अल्पकालिक निरीक्षक रहे, इसी तरह एडमस को भी अल्पकालिक पद दिया गया था। शिकागो के कई शिक्षक हल हाउस और अन्य सामाजिक सुधार आंदोलनों में सहभागी बने। ग्राहम टेलर विभाग के प्रारंभिक सदस्यों में से एक थे। बर्गीज ने भी बाद में पाया कि शिकागो स्कूल में व्यवस्थित शोधकार्य वर्ष 1908 में एबॉट और सोफोंसिया ब्रेकरिंज द्वारा हल हाउस अध्ययन से प्रारंभ हुआ। यद्यपि अधिकतर शोध छात्रों ने अपने शोध में सहायता के मकसद से स्वयं को सामाजिक सुधार कार्यक्रमों से इतर दिखाने का प्रयास किया, जिसकी वजह यह भी थी कि सामाजिक कार्यों का यह उभरता क्षेत्र शिकागो स्कूल के प्रारंभिक अध्ययनों के प्रति उनकी अनिच्छा को भी जाहिर कर सकता था।

शिकागो स्कूल से हुई इस शुरुआत का असर आगे चलकर सेंट क्लेयर ड्रेक और होरास केटन के Black Metropolis (1945) एवं मॉरिस जेनोविज के निर्देशन में वर्ष 1970 में विभिन्न समुदायों के अध्ययनों में साफ नजर आता है। 1980–85 में विलियम जूलियस विल्सन के प्रतिवेशों में निर्धनता पर किये शोधकार्यों ने एक बार फिर बेहद बेहतर तरीके से नगरों को सामाजिक प्रयोशाला के रूप में स्थापित किया। उन्होंने शिकागो स्कूल में शोध छात्रों के लिये सतत प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया,

लेकिन इसका उद्देश्य पूर्ण होने से पहले ही वह हार्वर्ड चले गये। हालांकि, इसके बाद भ द शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी का प्रभाव बना रहा।

शहरी समाजशास्त्र के अलावा पारंपरिक अध्ययन, अपराध आदि क्षेत्रों में भी शिकागो स्कूल ने बेहतरीन काम किया है। शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी में सामान्यतः जीएच मीड (1930) एवं डब्ल्यू लॉयड वार्नर (1940) का नाम उभरकर नहीं आता, लेकिन दोनों इस विभाग में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। लुईस वर्थ बताते हैं कि शिकागो स्कूल ने विभिन्न सैद्धांतिक मॉडलों को एकीकृत कर व्यक्तिगत दस्तावेजों से लेकर मानवजाति विज्ञान तक की विस्तृत श्रृंखला तक विस्तृत विश्लेषण किया है। पार्क मानते हैं कि थॉमस के कार्यों ने विभाग की बुनियाद रखी, लेकिन वही नहीं जानते थे कि वह एक स्कूल या मत का निर्माण कर रहे हैं। शहरी भूगोल पर हाल में हुए शोधकार्य बताते हैं कि शिकागो स्कूल बीसवीं सदी में शहरी सिद्धांतों की बुनियाद था तो लॉस एंजेलिस शहरी सिद्धांतों का भविष्य है। यहां उल्लेखनीय है कि लॉस एंजेलिस स्कूल (शिकागो स्कूल के एकाधिकार के विरोध में 1980 में शुरू हुए शोध कार्यक्रमों का प्रतीक नाम) ने शहरी समाजशास्त्र के बजाय समग्र शहरी अध्ययन पर व्यापक रूप से ध्यान केन्द्रित किया है।

3.2 प्रमुख सिद्धांत (Important Theories)

शहरी घटनाक्रमों और शहरी जीवन को स्पष्ट तौर पर समझने–जानने के लिये नगरीकरण की प्रक्रिया ने शोधकर्ताओं का ध्यानाकर्षित किया। विभिन्न काल–परिस्थितियों में इसे स्पष्ट करने के लिये कई शोध हुए हैं। इन शोधकार्यों में विश्लेषण के जरिये शहरी घटनाक्रमों के कुछ सिद्धांत स्पष्ट हुए।

3.2.1 पारिस्थितिकीय विशिष्टता (Ecological Classical)

बीसवीं सदी के पहले चरण में समाजशास्त्र विभाग के प्रारंभिक शैक्षिक विभाग स्थापित हो चुके थे। शिकागो विश्वविद्यालय के नये वैचारिक स्कूल की स्थापना समाजशास्त्रियों के छोटे समूह द्वारा की गयी थी। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने नैतिक आधार नगरों के स्वरूप के निर्धारण के प्रयासों और तरीकों का विरोध किया। पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने प्रारंभ में शहरी पर्यावरण एवं वस्तुनिष्ठता के दृष्टिकोण से तथ्यों का अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। इस दृष्टिकोण के विकास को लेकर पार्क अपने छात्रों को कहते थे कि यह अनुभवहीन और मार्गदर्शनहीन प्रयास है, वह इसके लिये अकसर अंग्रेजी कहावत 'seats of their pants dirty' का इस्तेमाल करते थे। दूसरी ओर, वेबर, मार्क्स और सिमेल जैसे यूरोपीय विचारकों ने तर्क दिया कि नगर एक ऐसा पर्यावरण है, जहां पूंजीवादी व्यवस्था की प्रभुत्ववादी ताकत मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। शिकागो स्कूल ने पूंजीवाद पर अध्ययन से किनारा कर लिया, लेकिन जैविक आधार पर शहरी जीवन की अवधारणा का प्रयास किया। शहरी समाजशास्त्र में पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण का विकास शिकागो विचार स्कूल (Chicago School of

Thoughts) में हुआ, जहां भौतिक और भौगोलिक कारकों को सामाजिक जीवन एवं मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाला माना गया। यहां विद्वानों ने नगरीकरण को निम्नवत व्याख्यायित किया हैः

रॉबर्ट पार्क (Robert Park)

पार्क मानते थे कि एक–दूसरे पर हमारी आर्थिक निर्भरता व्यक्तिगत संबंधों से अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने नगर के पारिस्थितिकीय सिद्धांत का सामान्य ढांचा पेश किया। पार्क की शुरुआत एक पत्रकार के रूप में हुई, जहां उन्होंने भ्रष्टाचार, शरणार्थी समुदाय, अपराध आदि शहरी मुद्दों को करीब से देखा, लेकिन सवालों के जवाब तलाशने की उनकी रुचि उन्हें वापस विश्वविद्यालय ले आयी। उन्होंने हार्वर्ड से दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की, बर्लिन में सिमेल के सहपाठी रहते हुए सामाजिक विचार का अध्ययन पूरा किया और फिर हीडलबर्ग से पीएचडी किया। 1913 से उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में अध्यापन प्रारंभ किया। समाजशास्त्र में रॉबर्ट पार्क का सबसे महत्वपूर्ण योगदान मानवीय पारिस्थितिकी (Human Ecology) रहा, जिसने डार्विन के प्रकृति के जीवनचक्र सिद्धांत को मानवीय सामाजिक व्यवस्था से जोड़ दिया। पार्क ने पाया कि पौधों और जन्तुओं के संबंधों में कई ऐसे गुण हैं, जिन्हें सामुदायिक संबंधों पर आसानी से लागू किया जा सकता है। पार्क किसी समुदाय के तीन आवश्यक गुण बताते हैं। 1. वह आबादी जो विशेष सीमाओं में व्यवस्थित है और जिसकी जड़ें संबंधित क्षेत्र में गहरी हैं, 2. व्यक्ति (Individual) की इकाइयां इसमें सहजीविता (Symbiotic) अंतर्निर्भरता को पोषित करती हैं। 3. समुदाय की स्पर्धा संख्या को नियंत्रित करती है और प्रतिस्पर्धियों के बीच संतुलन बनाये रखती है।

पार्क मानते हैं कि समाज पारिस्थितिकीय स्तरों के अलावा भी कई बातों से विकसित होता है। इसके लिये वह आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक क्रमों को सामने रखते हैं, जिन्हें पदानुक्रम (Hierarchical) में पिरामिड स्वरूप में व्यवस्थित किया गया हो। यहां पारिस्थितिकीय क्रम बुनियाद का काम करता है, जबकि नैतिक क्रम सर्वोच्च स्तर पर होता है। वह तर्क देते हैं कि समाज को बांधे रखने वाले बंधन रूढ़ियां और नैतिकता के बजाय भौतिक एवं जीवनप्रद होते हैं। शिकागो के समाजशास्त्रियों ने शहर के विश्लेषण के लिये पारिस्थितिकीय अवधारणा का प्रयोग किया। इसी अवधि में कई पशु पारिस्थितिकी विशेषज्ञ बदली हुई सघन परिस्थितियों में चूहों के व्यवहार पर शोध कर रहे थे। अधिक सघनता के चलते नवजात चूहों के प्रति वयस्कों की अनदेखी, हिंसात्मक व्यवहार और कई अन्य तरह के बदलाव सामने आये। इन शोधकर्ताओं ने बताया कि मानवीय पारिस्थितिकीय विशेषज्ञों ने मानव व्यवहार पर भौतिक परिस्थितियों के असर का अध्ययन करने का प्रयास किया और मनुष्यों ने पशुओं से बिल्कुल अलग तरीके से व्यवहार किया।

मानव पारिस्थितिकी समाजशास्त्र की एक शाखा है जो मानव समुदाय और इसके पर्यावरण के संबंधों का अध्ययन करती है। पार्क ने पारिस्थितिकी को उपयोगी दृष्टिकोण माना, क्योंकि नगरों में मानव एक क्षेत्रविशेष में अलग–अलग परिस्थितियों के अनुरूप रहते हैं। पार्क ने तर्क दिया कि नगर पारिस्थितिकीय समुदाय का रचनात्मक तत्व है, जिसके गुण अनजाने (Unconsciousness) में तभी विकसित हो गये थे, जब मनुष्य अस्तित्व के लिये जैविक संघर्ष की प्रक्रिया से गुजर रहा था। इस क्षमता ने मनुष्य को क्रियात्मक रूप से स्वयं और पर्यावरण के अनुकूल बनने योग्य बनाया। इन प्रक्रियाओं की व्याख्या मानव

पारिस्थितिकी के जरिये ही संभव है। पार्क मानते हैं कि नगर में प्राकृतिक वास या उत्पत्तिस्थल निहित हैं, जो स्वयं के नियमों का पालन करते हैं और इनमें किसी तरह के बदलाव की गुंजाइश उसी सीमा तक है, जहां तक संभव हो। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो समुदाय विभिन्न परिस्थितियों के लिये तयशुदा निश्चित दृष्टिकोण का ही अनुसरण करते हैं। इस तरह मानव पारिस्थितिकी का अर्थ मानव समूह के पर्यावरण में व्यवस्थित होने की प्रक्रिया और विभिन्न समूहों के अंतर्संबंधों का अध्ययन करने से है। 'समान पंखों वाली चिड़िया एक झुंड में रहती हैं' यह तर्क यद्यपि मनुष्यों पर पूरी तरह लागू नहीं होता, फिर भी ऐसा देखा जाता है। किसी क्षेत्रविशेष में सजातीय सामाजिक संगठन पाये जाते हैं। अंतर सिर्फ यह होता है कि मनुष्य तकनीकी साधनों के इस्तेमाल से पर्यावरण से जूझता है।

पार्क ने इस विचार को पूर्ण सहमति दी कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा अस्तित्व के संघर्ष का अहम पहलू है (Charles Darwin *On the Origin of Species, 1859*). पार्क ने नगर को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में रेखांकित किया, जहां विभिन्न समूह आंतरिक प्रक्रियाओं के बूते एक–दूसरे से संबद्ध हैं। शहरी जीवन अव्यवस्थित एवं अक्रियाशील नहीं था, बल्कि इसका झुकाव अपनी आबादी और संस्थानों का क्रमानुसार समूह बनाने की ओर था। पार्क के अनुसार शहरी जीवन दो विभिन्न स्तरों पर व्यवस्थित था, 1. जैविक (Biotic) और 2. सांस्कृतिक (Cultural)। वह बताते हैं कि जैविक या निर्धारित समुदायों का आधार प्रतिस्पर्धा होता है, जबकि सांस्कृतिक समुदाय संचार और समान विचार पर आधारित होते हैं। पार्क का तर्क है कि ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में इन दोनों के बीच बड़ा जटिल संबंध है। जैविक स्तर पर प्रतिस्पर्धा है, लेकिन समाज में समझौतों, सामूहिकता, नियमों के चलते यह प्रतिबंधित है।

वॉल्टर फायरी ने भावनाओं (Sentiments) एवं प्रतीकवाद (Symbolism) को पारिस्थितिकीय मानक माना है। इसके आधार पर पारिस्थितिकीय सिद्धांत दो चीजों, स्थान के गुण और अवस्थिति (Location) में गतिविधियों की प्रकृति पर निर्भर करता है। यह इसका अनुसरण करता हैः

1. स्थान और स्थानिक गतिविधियों का एकमात्र संबंध खर्चीला एवं लागत थोपने की प्रकृति वाला होता है
2. स्थानिक गतिविविधियां राजकोषीय कारकों को कम खर्चीला बनाने का प्रयास करती हैं

लुईस वर्थ (Louis Wirth)

लुईस का मत है कि नगरीकरण जीवन जीने का तरीका है। उन्होंने शहरी और ग्रामीण परिवेश में अंतर के विषय में जॉर्ज सिमेल के समान ही मत रखा है। वर्थ तर्क देते हैं कि घुमंतू सभ्यता से सामयिक सभ्यता की ओर और सर्वाधिक प्रभावी ग्रामीण समाज से सर्वाधिक प्रभावी शहरी समाज की ओर परिवर्तन की वजह कृषि से औद्योगीकरण की ओर परिवर्तन है। औद्योगिकीकृत समाज की ओर इस गतिशीलता ने ही सामाजिक जीवन को नाटकीय रूप से परिवर्तित किया है। वह कहते हैं, 'शहरों का विकास और

दुनिया का नगरीकरण आधुनिक दौर के सबसे प्रभावी तथ्यों में से एक है। इस प्रक्रिया ने जीवन के तरीकों, इन परिवर्तनों के अध्ययन और नगरीकरण की प्रक्रिया को नया आकार दिया है।' यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने नगर को निर्धारित परिभाषा देने का प्रयास किया है, लेकिन वर्थ ने शहरी जीवन के सामाजिक गुणों को समझने के लिये समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। वह मानते हैं कि सघनता, अवस्थिति के मात्रात्मक विश्लेषण के बजाय शहरी लोगों के जीवन में आने वाले बदलाव, परिवर्तन की प्रक्रिया जैसे गुणों का अध्ययन शहरी सामाजिक व्यवस्था को आसानी से समझा सकता है। मात्रात्मक रूप से अकेले शोधकर्ता के लिये सामान्यतः सघन आबादी वाले क्षेत्रों और और बड़ी सदस्यता वाले समुदायों की सामाजिक गतिविधियों को सामान्यीकृत करना मुश्किल होता है। समाजशास्त्रियों के बीच एक सामान्य मतैक्य है कि शहरों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ओर अमेरिका के कदम बढ़ने के बाद जो परिवेश उत्पन्न हुआ, वही नगरीकरण है। वर्थ के परीक्षणों के अनुसार, 'नगर पारिवारिक इकाइयों के बजाय एकल अभिभावकों, अल्पसंख्यक समुदायों को अधिक संख्या में आकर्षित करते हैं, जो अपने घर लेने के बजाय किराये पर रहना पसंद करते है। ऐसे में शहरी परिवेश को और संयोजित बनाने की दिशा में यह समाधान अपनाया जा सकता है कि घर खरीदने की संभावनाओं और अवसरों को अधिक बढ़ाया जाये। खुद की जिम्मेदारी पर घर देना यानी 'Rent-to-own' कार्यक्रम इसका विकल्प हो सकता है। इससे लोगों को जोड़ने के लिये शहरों में किराये पर रहने वालों को प्रेरित करना चाहिये और आवास पर स्वामित्व रखने वालों को टैक्स में छूट जैसे प्रोत्साहन दिये जाने चाहिये। एक अन्य समाधान यह भी है कि समुदायों के भीतर ही रोजगार के अवसर सुनिश्चित किये जायें, ताकि घर और रोजगार के क्षेत्र अलग–अलग न हों। ऐसा होने से सामुदायिक एवं एकजुटता का भाव विकसित होगा।'

3.2.2 नव विशिष्ट (Neo-Classical)

नगर आकार सिद्धांत और विशिष्ट सिद्धांत में सामने आयी कमियों को जिन सिद्धांतों ने दूर किया है, उन्हें सामान्यतः दो अलग अवधारणात्मक उदाहरणों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। ये निम्न हैं:

1. वे शहर जिन्हें क्रिस्टेलर मॉडल के तर्कों पर व्याख्यायित किया गया है
2. नेटवर्क सिटी

नवविशिष्ट एवं क्रिस्टेलर मॉडल पर किसी शहर की व्याख्या पूर्ववर्ती विशिष्ट उदाहरणों (Classical Paradigm) की कमियां दूर करने का साधन बनीं। पहला उदाहण नगर आकार सिद्धांत की कमियों को दूर करता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है:

1. शहरी आकार का अर्थ ऐसी अवस्था से है, जहां उत्पादन लाभ एवं अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की स्थिति बनी रहे
2. सभी नगर समान नहीं होते, लेकिन वे अपने आकार के अनुरूप विभिन्न सामानों का उत्पादन करते हैं

इस दृष्टिकोण के माध्यम से शहरी अवस्थिति सिद्धांत (Urban Location Theory) में सुधार आया और नव शहरी आर्थिकी को समझना आसान हो सका। वॉन थुनेन और अलोंसो मूथ के कार्यों को

विस्तार देकर और इनमें संशोधन से यह भी स्पष्ट हुआ कि उत्पादन लाभ और अवस्थिति मूल्य के बीच संतुलन की अवस्था 'अंतर शहरी संतुलन' संभव है। उन्होंने दावा किया था कि विकेन्द्रीकरण से किराये में मामूली गिरावट को यात्रा खर्च में मामूली बढ़ोतरी से पूरा करना संभव है। इस मॉडल का निष्कर्ष यह बताता है कि सभी संभावित अवस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ का चयन किस तरह किया जा सकता है (the famous 'Muth condition'), यानी केन्द्र तक कम पहुंच का लाभ कम किराये और उच्चतर पर्यावरणीय गुणवत्ता के तौर पर मिलता है। उदाहरण के लिये, यदि हम दिल्ली के किसी हाईप्रोफाइल एरिया में किराये पर रहना चाहते हैं तो हमारे पास इसके लिये बड़ा बजट होना जरिये है और यह क्षेत्र लोगों की अधिक आबादी के कारण काफी सघन भी होगा। यही स्थिति अंतर शहरी संतुलन पर भी लागू होती है। यदि किसी शहर में किराया अधिक हो और वहां लाभ की संभावनायें इसके मुकाबले कम हों तो वहां न तो लोग ही रहना पसंद करेंगे, न ही उद्यम। ऐसे में बाजार की शक्तियां शहर के आकार को उपयोगिता के उच्चतम स्तर पर ले जाती हैं, जिससे वहां रहने वाले लोगों और वहां के उद्यमियों को लाभ मिले। यही नव शहरी आर्थिकी का दृष्टिकोण है। समान उत्पादन प्रक्रियाएं अपरिहार्य रूप से एकसमान आकार के शहरों को विकसित करती हैं (Camagni, 1992). हेंडरसन (1985) के अनुसार इस प्रत्यक्ष विरोधाभास से निपटने के लिये या तो हर शहर में अलग–अलग उत्पादन को बढ़ावा देने की अवधारणा पर काम करना होगा (यानी हर शहर के लिये एक निश्चित उत्पादन) या फिर क्रिस्टेलर मॉडल के उपयोग से नवविशिष्ट तर्क का इस्तेमाल करना होगा। यह मॉडल बताता है कि शहरी पदानुक्रम के अनुरूप शहरी तंत्र स्वयं कुछ ही अनुक्रमों के इर्द–गिर्द व्यवस्थित होता है। हर उच्च क्रम अपने पद के अनुरूप ही वस्तुओं, सेवाओं का उत्पादन करता है, लेकिन वहां अपने से नीचे के क्रम के भी उत्पादन मिलते हैं। ऐसे में शहर को कार्य के अनुरूप विशिष्टता दिये जाने पर बल दिया जाता है। क्रिस्टेलर मॉडल पर नव विशिष्ट तर्क को लागू करने पर पदानुक्रम आधारित शहरी व्यवस्था परिभाषित होती है, जिसमें नगरों के आकार के अंतर को वहां उपलब्ध लाभ और उच्च शहरी किराये से देखा जा सकता है।

हालिया शोधों में शहरी पदानुक्रम व्यवस्था को नव आर्थिक भूगोल दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। विशुद्ध रूप से आर्थिक परिस्थितियों को लागू करने पर पता चलता है कि शहरी व्यवस्था का पदानुक्रम विकास परिवहन लागत, उत्पादन की विविधता, प्रतिस्पर्धा, वित्तीय व्यवस्था, अवस्थिति आदि के संतुलन से हुआ है। इस तर्क के अनुसार छोटे शहर यानी जहां आर्थिक रूप से कम संसाधन उपलब्ध हैं, या वे शहर जो भौगोलिक रूप से गौण हैं यानी जहां उत्पादन कम और जीवनमूल्य कहीं अधिक है, भी छोटे बाजारी क्षेत्रों को विकसित कर सकते हैं, जिनमें परिवहन की लागत कम हो और जहां अवस्थिति के अनुरूप लाभ लिया जा सके। ये मॉडल बताते हैं कि किस तरह क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित पदानुक्रम आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक हो सकते हैं साथ ही यह भी समझाते हैं कि किस तरह उत्पाद को पूरी क्षमता के साथ बेच पाना संभव हो सकता है। इस तरह ये स्पष्ट करते हैं कि भले ही नगरों का आकार समान हो, लेकिन वहां अलग–अलग तरह की आर्थिक गतिविधियां संभव हैं।

नेटवर्क सिटी (Network City)

नेटवर्क सिटी हालिया शोधकार्यों से उभरा उदाहरण है, यह नगर आकार सिद्धांत के अलावा नव विशिष्ट, क्रिस्टेलर दृष्टिकोण की कमियों का समाधान बताता है। इस उदाहरण का सबसे अहम पहलू यह है कि इसकी मदद से क्रिस्टेलर के तर्क पर आधारित शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के जुड़ाव को तोड़कर देखा जा सकता है। क्रिस्टेलर के दृष्टिकोण से यह समझाना मुश्किल है कि महज तीन लाख आबादी वाला शहर ज्यूरिख कैसे टोक्यो और न्यूयॉर्क जैसे बड़े शहरों के ही समान अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विशिष्ट हिस्सा बन गया है? दरअसल, वास्तविक दुनिया में यह जरूरी नहीं कि शहर का आकार उसके कार्यों को विशिष्टता प्रदान करे। शहरी आकार और शहरी क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करना ही SOUDY (Supply Oriented Dynamic Approach) मॉडल का महत्वपूर्ण गुण है (Camagni et al., 1986), यह बताता है कि नगरों के आकार का अंतर हर नगर के पदानुक्रम के लिये अलग होता है और यह उसके विशेष आर्थिक गतिविधियों से जुड़ा होता है। यह मॉडल निम्न अवधारणा पर आधारित हैः

उच्च क्रम की आर्थिक गतिविधियों को नगर में अस्तित्वमान करने के लिये उच्च संभावनाओं की आवश्यकता होती है (शहरी आबादी के संदर्भ में) ताकि उत्पादन को क्षमतापूर्ण परिस्थितियों में किया जा सके, जैसा कि क्रिस्टेलर के मॉडल में भी बताया गया था।

उप सांस्कृतिक सिद्धांत (Sub-Culture Theory)

इस सिद्धांत का वर्णन लुईस वर्थ ने 1938 के अपने निबंध "Urbanism as a Way of Life" में किया है। इसमें लुईस ने सामाजिक विघटन एवं व्यक्ति (Individual) के हस्तांतरण को नगरीकरण का वजह बताया है। हालांकि, हर्बर्ट गेन ने अपने शोधपत्र "Urbanism and Sub-urbanism as Ways of Life: A Re-Evaluation of Definitions" (1962b) में वर्थ के सिद्धांत के समक्ष आने वाली चुनौतियों का वर्णन किया है। गेन्स और अन्य मानते हैं कि किसी विशेष सामाजिक प्रभाव को नगरीकरण का जिम्मेदार नहीं माना जा सकता है। वह कहते हैं कि इससे दोनों ही स्थितियों के लिये समस्या खड़ी हो जाती है और तीसरे विकल्प की जरूरत महसूस होती है। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि जो सवाल इस शोधपत्र से संबंध रखता है, वह विश्लेषणात्मक है। यह सघन आबादी के व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ इन सवालों का जवाब तलाशता हैः नगरीकरण में अलग समुदायों के बीच रहने और सघन आबादी से व्यक्ति पर सांस्कृतिक और व्यावहारिक रूप से क्या परिवर्तन सामने आते हैं? जवाब में यह बात सामने आती है कि आबादी में संयोजित छोटे और बड़े समुदायों के बीच स्पष्ट अंतर होते हैं, जो आयु, परंपराओं, शैक्षिक स्तर, उनमें रहने वाले लोगों आदि के आधार पर अलग–अलग हो सकते हैं। आर्थिक अवसर और राजनीतिक ढांचा भी इस तरह के अंतरों को विकसित करने के लिये कुछ हद तक जिम्मेदार है। यहां यह भी स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण को विभिन्न स्तरों पर परीक्षण करने की जरूरत होती है। इसके कारणों पर विचार करते हुए नगरीकरण अधिक प्रभावी नजर नहीं आता है (वर्ग, जाति, लिंग आदि कारकों की तुलना में)। हालांकि, यदि प्राथमिक कारण नहीं होने के बावजूद नगरीकरण इस तरह की घटनाओं के लिये स्वायत्त कारण के तौर पर सामने आता है तो यह नगरीकरण की प्रकृति को समझने के लिये महत्वपूर्ण

तथ्य हो सकता है। इससे इस सवाल का जवाब भी मिल सकेगा– नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव क्या हैं?

प्रस्थापना (Preposition)

1. शहरी स्थारनों की बढ़ती संख्या के साथ उप सांस्कृतिक विविधताओं की भी संख्या बढ़ती है
2. आबादी की सघनता अलग–अलग उप संस्कृतियों को जन्म देती है (Wirth's "heterogeneity," Park's "urban mosaic") (Preposition)
3. आबादी का आकार ढांचागत विभेद को गतिशील सघनता (Dynamic Density) की प्रक्रिया के जरिये बढ़ावा देता है (Durkheim 1933; Schnore 1958).

प्रतिस्पर्धा, तुलनात्मक लाभ और संबद्ध चयन जैसे बल विशिष्ट आंतरिक उपव्यवस्थाओं को बढ़ावा देते हैं, जो अलग–अलग व्यवस्थाओं से जुड़े होने के कारण संस्कृतियों को अलग करते हैं। परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक वर्गों में व्यवसाय, समान रुचियों वाले समूह, जीवनस्तर आदि के आधार पर उपसंस्कृतियां भी उभरती हैं। नगरीकरण एवं सांस्कृतिक विभेद का यह संबंध ऐतिहासिक और सामयिक दोनों व्यवस्थाओं के अध्ययन में सामने आया है। अधिकतर मामलों में आर्थिक विशेषीकरण इसकी सबसे बड़ी वजह पायी जाती है (Hawley 1971; Gibbs and Martin 1962; Ogburn and Duncan 1964; Meade 1972; Betz 1972; Clemente and Sturgis 1972; Crowley 1973). श्रम का विभाजन पूर्ववर्ती ही रहता है या नगरीकरण के हिसाब से बदलता है (Hawley 1971, p. 328; Kemper 1972), यह प्रश्न भी प्रासंगिक है। सूक्ष्म स्तर पर कई ऐसे तथ्य भी उपलब्ध हैं जो आकार के स्वतंत्र कारणत्व को भी स्पष्ट करते हैं (cf. Literature on organizational size and differentiation).

भारतीय इतिहास में नगरों या कस्बों के विशेष निशान मिलते हैं। प्राचीन ग्रंथों में हमें ऐसे अकेले क्षेत्रों की भी जानकारी मिलती है, जहां सभी जातियों के लोग रहते थे। यह नगरों में ही संभव था कि ब्राह्मण, ज्योतिषी जैसे धार्मिक अनुष्ठान करने वाली जातियां और दैनंदिन उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करने वाले कारीगर एक साथ रहते थे। (Rowe 1973, p. 213).

नगरीकरण में उप संस्कृतियों के विकास का एक अन्य कारण पलायन भी है। इसके कारण एक ही केन्द्र वाले क्षेत्र में कई आंतरिक इलाके विकसित हो जाते हैं। यानी भौगोलिक रूप से एक ही दिखने वाले क्षेत्र में कई अलग–अलग समूह उपस्थित रहते हैं। इसे इस तरह भी समझ सकते हैं कि शरणार्थियों को नगर में जितना अधिक क्षेत्र व्यवस्थाओं के लिये दिया जायेगा, उतने ही उप–सांस्कृतिक विविधतायें सामने आयेंगी। छोटे क्षेत्र में इसकी संभावना कम रहती है। इस तरह शहर के आकार पर भी यह निर्भर करता है। (e.g., Schnore 1963; Hanna and Hanna 1971,p. 109).

प्रस्थापना 2 (Preposition 2)

कोई क्षेत्र जितना अधिक शहरीकृत होता है, वहां उपसंस्कृतियों की श्रेणियों का विकास भी उतना ही तीव्र होगा।

1. पहली प्रस्थापना अहम समूहों की समान धारणा पर आधारित है। किसी उपसंस्कृति को मानने वाली आबादी जितनी अधिक होगी, सांस्थानिक संपूर्णता भी उतनी ही अधिक होगी (Breton 1964). यह अंतर्निहित मूल तंत्र है कि नगरीकरण से समूहों का आकार बढ़ता है और यह आकार सामाजिक उपव्यवस्थाओं व समर्थक संस्थानों या प्रतीकों को जन्म देता है, जो उपसंस्कृति का ढांचा तैयार करते हैं और इसे पुष्ट करते हैं। ये संस्थान–प्रतीक जिनमें वेशभूषा, संगठन आदि होते हैं, अधिकरण के स्रोतों और समूहों की स्थापना करते हैं और सामाजिक सीमाओं को बांध देते हैं। संख्या बढ़ाने के सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे समूह के भीतर ही विवाह संबंधों को मान्यता देते हैं, प्रोत्साहित करते हैं।
2. एक अन्य परिदृश्य आपराधिक उप समुदायों का है। बड़े शहरों में पेशेवर आपराधिक समूह समान ऐतिहासिक समस्या रही है। इन लोगों का अपना अलग आवासीय क्षेत्र होता है और उनके मुलाकातों के स्थान भी अलग होते हैं। ऐसे समूहों से जुड़े लोग परस्पर सुरक्षा, प्रशिक्षण का भी काम करते हैं। (e.g., Tobias 1972; Lapidus 1966, pp. 153-63). इसी तरह के उदाहरण कारीगरों के उप समुदायों, छात्रों की उपसंस्कृति, अकेले रहने वाले युवाओं और अन्य समूहों में भी मिलते हैं। हालांकि, ये सभी उदाहरण हैं।
3. ऐसे तथ्य विभिन्न शोधों में सामने आये हैं कि शहर जितना बड़ा होगा, वहां उतने ही अधिक संस्थान और सेवाएं उपलब्ध होंगी और कोई एक विशेष सेवा तो वहां की पहचान होगी (Keyes 1958; Ogburn and Duncan 1964; Thompson 1965; Abrahamson 1974). विशेष सामुदायिक संस्थानों की मौजूदगी आंतरिक विवाह संबंधों, संयोजन, उप संस्कृति की मान्यताओं को बढ़ावा देती हैं, जिन्हें शहरी शरणार्थियों e.g., Breton 1964; Doughty 1970; Little 1965) और व्यावसायिक समूहों भी समर्थन मिलता है (e.g., Lipset et al. 1962, pp. 170-208).
4. अंतर सामूहिक संबंध भी उप संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। किसी क्षेत्र में जितनी अधिक उपसंस्कृतियां विकसित होंगी, वहां इनके मध्य उतना ही अधिक द्वंद्व उत्पन्न होगा और इसके परिणामस्वरूप और नयी उपसंस्कृतियां सामने आयेंगी। सामूहिक स्तर पर प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की भावना समूह में ही संयुक्त रहती है (Simmel 1951; Coser 1956; Sherif 1956). व्यक्ति के स्तर पर देखें तो उसका भिन्न समूह से संपर्क उसे अपने समूह के मानकों, मूल्यों की ओर खींचता है (कम से कम प्रारंभिक तौर पर तो यह होता ही है)। क्लाइड क्लकहोन (1960, p. 78) कहते हैं, आबादी के विस्तार का प्रत्यक्ष परिणाम विभिन्न नैतिक मूल्यों के परस्पर विरोधाभासी दृष्टिकोण के तौर पर सामने आता है। ऐसी स्थिति में मौजूदा अस्तित्वमान नैतिक क्रम को सही ठहराने के कारण तलाशे जाने जरूरी हो जाते हैं, अन्यथा या तो वह नकार दिया जायेगा अथवा समन्वय के जरिये उसे नया स्वरूप दे दिया जायेगा। नैतिक क्रम पहली बार में समस्या के तौर पर उभरता है, लेकिन विचार समय के साथ समूहों के बीच और मनोवैज्ञानिक रूप से अपना स्थान बना लेते हैं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण और अशहरी (Non Urban) क्षेत्रों में मिलने वाले विशेष उपसमूह उपसंस्कृति पर होने वाले नगरीकरण के प्रभावों में मध्यस्थता का काम करते हैं।

3.3 निष्कर्ष (Conclusion)

विशिष्ट से लेकर नवविशिष्ट और उपसांस्कृतिक सिद्धांत तक सबने अपने–अपने तरीके से शहरों की व्याख्या की है। आबादी की बढ़ती सघनता के हिसाब से शहरों की संख्या और लोगों का नव शहरी पर्यावरण के प्रति अनुकूलन भी बढ़ता जा रहा है।

3.4 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीकरण के विशिष्ट सिद्धांतों का वर्णन करें।
2. नगरीकरण के नव विशिष्ट सिद्धांत की व्याख्या करें।
3. नगरीकरण का उप सांस्कृतिक सिद्धांत क्या है? विस्तार से बतायें
4. नगरीकरण के विभिन्न सिद्धांतों का तुलनात्मक विश्लेषण करें। इसे सारिणी से भी समझायें।

3.5 सहायक अध्ययन

1. Sociology.iresearchnet.com › Urban Sociology

2. Abbott, A. (1999) Department and Discipline: Chicago Sociology at One Hundred. University of Chicago Press, Chicago.

3. Becker, H. S. (1999). The Chicago School, so-called. Qualitative Sociology 2.1, 2:3-12.

4. Blumer, M. (1984) The Chicago School of Sociology: Institutionalization, Diversity, and the Rise of Socio logical Research. University of Chicago Press, Chicago.

5. Deegan, M. J. (1986) Jane Addams and the Men of the Chicago School, 1892-1918. Transaction Books, New Brunswick, NJ.

6. Faris, R. E. L. (1970) Chicago Sociology, 1920-32. University of Chicago Press, Chicago.

7. Kurtz, L. R. (1984) Evaluating Chicago Sociology: A Guide to the Literature, with an Annotated Bibliography. University of Chicago Press, Chicago.

8. Matthews, F. H. (1977) Quest for an American Sociology: Robert E. Park and the Chicago School. McGill-Queen's University Press, Montreal.

9.Short, J. F. (Ed.) (1971) The Social Fabric of the Metropolis: Contributions of the Chicago School of Urban Sociology. University of Chicago Press, Chicago.

10.The University and the City: A Centennial View of the University of Chicago: The Urban Laboratory.

Online. http://www.lib.uchicago.edu/projects/centcat/centcats/city/citych3_01.html

इकाई– 4

मार्क्सवाद और नगरीय प्रारूप (Marxist Approach to City)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 नगरों पर मार्क्सवाद की मूल धारणा

4.2 नगरीय संकल्पना में मार्क्स का सैद्धांतिक जुड़ाव

4.3 नगरवाद के जरिये मार्क्सवाद की पुनर्परिभाषा

4.4 निष्कर्ष

4.5 अभ्यास प्रश्न

4.6 सहायक अध्ययन

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे–

- नगरों पर मार्क्सवाद की बुनियादी संकल्पना
- नगरों के विचार से मार्क्स और एंगेल्स का सैद्धांतिक जुड़ाव
- नगरों में मार्क्स और मार्क्सवादी विचारों का समालोचनात्मक विश्लेषण

4.1 नगरों पर मार्क्सवाद की मूल धारणा (Basic Assumptions of Marxism on City)

पूर्व और पश्चिम में अक्रियाशील और जीर्ण होने के बाद मार्क्सवाद एक शैक्षिक विचार के रूप में बदल गया। यह विचार कई शोधकर्ताओं के लिये आधुनिक जीवन व घटनाक्रमों के विश्लेषण एवं प्रश्न उठाने का माध्यम बना। केटनेल्सन (1992) ने अपनी पुस्तक "The Marxism and The city" में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से नगरों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया है। उनके अनुसार, सामाजिक सिद्धांत के रूप में मार्क्सवाद की खामियों को नगरों में स्थानिक महत्व के अनुसार लागू कर दूर किया जा सकता है। वह तर्क देते हैं कि मार्क्सवाद में आज भी ऐतिहासिक प्रश्नों के उत्तर तलाशने की क्षमता है। इसके जरिये उन सवालों के जवाब तलाशे जा सकते हैं कि कैसे कोई नगर और समाज सामंती व्यवस्था से पूंजीवाद की ओर बढ़ा।

वहीं, पीटर सांडर्स जैसे विद्वान मानते हैं कि मार्क्सवाद का यह विचार कि पूंजीवाद का विकास विघटनकारी ताकतों को बढ़ावा देता है, शहरी सिद्धांत का विकास नहीं कर सका। इस सन्दर्भ में फिलिप अब्राहम तर्क देते हैं कि नगर सामाजिक वस्तु नहीं है, यही वजह है कि शहरी विश्लेषकों को हृदयहीन विश्लेषक माना जाता रहा। केटनेल्सन बताते हैं कि सांडर्स का टिप्पणीनुमा सर्वे और अब्राहम की सलाह नगरों की स्थिति का अध्ययन करने की दिशा देते हैं। इस तरह के तर्कों के अंत और मार्क्सवाद को स्पष्ट करने के लिये मैनुअल कैस्टल अपनी पुस्तक "The Urban Question" में कहते हैं कि ऐसा कोई भी सिद्धांत नहीं है जो सामाजिक सिद्धांतों का हिस्सा नहीं बन सके।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने नगर के सूक्ष्म समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर जोर दिया है। नगरीय घटनाक्रमों को समझने के लिये उनके द्वारा अपनायी गयी मूल धारणा निम्नवत हैः

- पूर्व औद्योगिक काल में लोग पारंपरिक समाजों से जुड़े हुये, मौलिक और आदिवासी थे (Katznelson Ira (2005), Marxism and the City, oxford publication, New York)
- नगरों का विकास असभ्यता से सभ्यता की ओर रूपांतरण का परिणाम था
- लोगों ने राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता और उत्पादन की विशेषता के महत्व को समझा
- मानव के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक पूंजीवाद समाजवाद में परिवर्तित नहीं हो जाये

- आर्थिक तंत्र के प्रभाव, असमानता और अंतर्द्वंद्व

4.2 नगरीय संकल्पना में मार्क्स का सैद्धांतिक जुड़ाव (Theoretical Engagement of Marx in Concept of City)

यद्यपि नगरों के सन्दर्भ में मार्क्सवादी विश्लेषकों की अच्छी संख्या है, लेकिन मार्क्स ने स्वयं नगरों को लेकर काफी कम लिखा है। रिचर्ड होगन (2009) के अनुसार नगरों के संबंध में मार्क्स ने विस्तृत विचार नहीं किया है, लेकिन उनक लेखन के तीन अलग–अलग सेट मिलते हैं, जिनमें उन्होंने प्रमुख मुद्दों को छुआ है। ये मुद्दे हैं, 1. नगर या कस्बों के आंतरिक इलाकों का आर्थिक शोषण (और राजनीतिक प्रभुत्व एवं नगर का सामाजिक–सांस्कृतिक नायकत्व) 2. ग्रामीण संपत्तियों के मुकाबले शहरी संपत्तियों का अधिक बाजार मूल्य 3. ग्रामीण लोगों के मुकाबले शहरी लोगों की राजनीतिक (सामाजिक व सांस्कृतिक भी सम्मिलित) परिवर्तन या क्रान्ति की क्षमता। आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद के पश्चिमी यूरोपियन मार्ग में नगरीकरण के ये तीनों आयाम शामिल हैं। पूंजीवादी बैंकर, व्यापारी, उत्पादक और जमींदार भी नगरीय आबादी का हिस्सा थे जो आंतरिक क्षेत्रों में श्रमिकों–कामगारों का शोषण करते थे। यहां तक कि उन्होंने कृषि समेत ग्रामीण उद्यमों के भी 'विकास' का प्रयास किया। जमीनों को पट्टे या किराये पर देकर उन्होंने नगरीय रियल इस्टेट के जरिये दिन दूना, रात चौगुना लाभ हासिल किया। यही नहीं, उन्होंने उन ग्रामीण क्षेत्रों की जमीनों को भी नगरीय सुविधाएं उपलब्ध कराकर नगरीकरण का प्रयास किया, जहां भूमि के बाजार की उपलब्धता नहीं थी। पूंजीवादियों की यह जीत ग्रामीण क्षेत्रों पर नगरवाद की भी जीत थी। फ्रांस के वर्सीलीज में तीसरे गणराज्य के रूप में किंग लुई 16वें के नगरीय विकास का लक्ष्य तो पूरा हुआ, लेकिन इस पूरे दौर में किसानों की हार, जमीनों का स्वामित्व अभिजात्य के हाथों में चले जाने से विपक्ष भी खड़ा होता गया। यह विरोध वेंडी के छोटे किसानों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि श्रमजीवी वर्ग और बाद में उग्र कम्यूनार्ड (पेरिस कम्यून में शामिल रहे लोग) तक बढ़ता गया। फ्रांसीसी पहलू से आधुनिक विश्व को देखें तो भले ही इसकी प्रकृति की आलोचना हुयी, लेकिन यह सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर हुये परिवर्तन की मार्क्सवादी व्याख्या का प्रतीक है। इसमें पेरिस के कामगार, श्रमजीवी भी शामिल हैं, जिनके लिये मार्क्स ने यह उम्मीद जतायी कि वे निश्चित तौर पर दोबारा उठ खड़े होंगे। यह पूरी प्रक्रिया एक सामान्य सैद्धांतिक दृष्टिकोण को भी जन्म देती है, जिसे अमेरिका या 19वीं सदी की किसी भी अन्य पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर लागू करके देखा जा सकता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने नगरों पर अपने प्रारंभिक कार्य *The Condition of the Working Class in England*, मेनचेस्टर और अन्य औद्योगिक क्रान्ति के प्रारंभिक नगरीय केन्द्रों की चर्चा से ऐसा रास्ता तय किया जो मार्क्सवाद नहीं कर सका था। उन्होंने नगरों में ऐसे तंत्र की पहचान की जो ढांचे और संस्था को जोड़ता था। एंगेल्स का नगरों और मार्क्सवाद का अध्ययन ऐतिहासिक विश्लेषण और राष्ट्र राज्य पर विचार से मुक्त है। एंगेल्स ने वे तीन बुनियादी सवाल उठाये, जो मार्क्स के सैद्धांतिक प्रस्ताव को आगे बढ़ाते हैं, 1. वृहद प्रक्रियाओं के अंतर्संबंध, मुख्यतः पूंजीवाद का विकास और इससे आधुनिक पूंजीवादी नगरों का उभरना 2. संचय प्रक्रिया के बिन्दु के रूप में नगर और इसके आंतरिक पहलुओं का संबंध 3. वर्ग और समूहों में जागरूकता के विकास और उपरोक्त स्वरूपों का संबंध।

कार्ल मार्क्स ने दुनिया में परिवर्तन की बात पर जोर सिर्फ व्याख्या के लिये नहीं किया, बल्कि उनका अधिकतर जीवन बड़े नगरों में बीता। वह राइनलैंड नाम के छोटे कस्बे में जन्मे थे, जिसके बाद वह अपेक्षाकृत बड़े कस्बे बोना में आ गये, जहां उन्होंने कानून की पढ़ाई की। यहां से वह और बड़े नगर बर्लिन पहुंचे। मार्क्स की नगरों को बढ़ावा देने के समर्थन को उनके कथन, 'ग्रामीण जीवन की मूर्खता' से बल मिलता है। वह पूंजीवादियों की इसलिये प्रशंसा करते थे कि उन्होंने विशाल नगरों की स्थापना की और देश का शासन कस्बों में निहित किया (क्योंकि नगरों में अकसर आवारा, शरणार्थियों को भी स्वीकृति मिल जाती है और नये विचारों के प्रति उदारता का भाव नजर आता है, नयी संस्कृतियों का विकास होता है)। कार्ल मार्क्स के लिये स्वयं को राजधानी में अपनी वृत्ति, पेशा, ब्रिटिश संग्रहालय और समृद्ध अध्ययन से दूर हो पाना बेहद मुश्किल था। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि जब 1858 में मार्क्स परिवार लंदन वेस्ट एंड से एक छोटे नगर केंटिश टाउन (अब लंदन बोरो ऑफ केमडेन) में बसने गया तो मार्क्स ने इसे बर्बर क्षेत्र की संज्ञा दे डाली। वह अकसर शिकायत करते थे कि वहां रात के वक्त निकलने पर सिर्फ घोर अंधेरा, एकाकीपन और कीचड़ ही मिलता है।

पूंजीवादी ढांचे में नगरों की कार्यभूमिका को लेकर मार्क्स का दृष्टिकोण स्पष्ट था। वह मानते थे कि नगर उत्पादक बलों के विस्तार और सामाजीकरण में मदद करते हैं, लेकिन इसका एक पहलू यह भी है कि वे श्रम विभाजन की बुनियाद हैं। सरकार के लिये सीटें बढ़ाने का जरिया बनते हैं और यहां वर्ग विभाजन, आवासीय पृथक्कीकरण साफ नजर आता है। पूंजीवादी व्यवस्था के असमान भौगोलिक वितरण की चोट भी नगरों को झेलनी पड़ती है। मार्क्स यह अच्छी तरह समझते थे कि नगर स्वयं उत्पादन का केन्द्रबिन्दु रहकर कार्य करते हैं, लेकिन इन तथ्यों की जानकारी के बावजूद उन्होंने नगरों के संबंध में कभी विस्तार से नहीं लिखा। न ही उन्होंने कभी अपने औद्योगीकरण के सिद्धांत से नगरीकरण के सिद्धांत को संबद्ध किया। "Economic law of motion of modern society" की चर्चा करते हुये वह ऐसे संयोगों की ओर इशारा करते हैं, जिनमें पूंजी की भूख को मिटाने के मकसद से नगरों के आंतरिक ढांचे, आकार में पूंजीवाद के अनुरूप परिवर्तन, पुनर्व्यवस्था की जाती है। मार्क्स ने इसे पूंजीवाद के संचय का सामान्य नियम "General Law of Capitalist Accumulation" बताया है। कस्बों के सुधार के विषय पर मार्क्स कहते हैं कि यह प्रक्रिया संपत्ति, धन के बढ़ावे से जुड़ी हुयी है। अनुचित तरीके से निर्मित नगरों के ध्वस्तीकरण, महलों की जगह बैंकों, गोदामों का निर्माण, व्यावसायिक गतिविधियों के लिये होने वाले परिवहन के लिये चौड़ी गलियां, आरामदायक सुविधाओं के लिये ट्राम आदि का निर्माण निश्चित रूप से निर्धन लोगों को और अधिक बदतर हालात में पहुंचाकर हाशिये पर रखता है। इसे मार्क्स ने पूंजीवाद का स्याह पहलू बताया है। वह कहते हैं कि उद्योगों के विकास, पूंजी में बढ़ोतरी और कस्बों के विकास व 'सुधार' के साथ यह बुरा पहलू लगातार बढ़ता जाता है।

फ्रेडरिक एंगेल्स ने 1845 में "The Condition of the Working Class in England" और 1872 में "The Housing Question" लिखीं। वह बताते हैं कि नगरों में पूंजी संचय कामगार वर्ग के जरिये ही गतिशील होता है। औद्योगीकरण में उभरी मिलों में लाभ के मकसद से बाजार तंत्र ने किस तरह नगरों को बुरी तरह प्रभावित, पीड़ित किया है, यह आसानी से महसूस किया जा सकता है। पूंजीवादी छाया में होने वाला नगरीकरण सिर्फ और सिर्फ भेदभाव व असमानता को ही बढ़ावा देता है। एंजेल और

मार्क्स ने जिन साझा विचारों पर अपनी राय दी है, वे हैं– अंधभक्ति (Fetishism), वर्ग (Class), अभ्यास (Practice) और प्रजातियां (Species)।

'वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति' मार्क्स के मौलिक विचारों में से एक है। कैपिटल के पहले अध्याय के अंत में वह पूंजीवादी व्यवस्था में वस्तुओं के स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा करते हैं, लेकिन सामान्य जीवन और ज्ञान पर इसके प्रभाव को देखते हुये हम इस मूल संदेश को और विस्तार से समझ सकते हैं। यह इस बात पर जोर देता है कि दुनिया हमारे सामने किस तरह पेश आती है। यह बिन्दु बताता है कि भले ही उनकी उपस्थिति वास्तविक महसूस होती है, लेकिन असल में उनमें सत्यता का अभाव भी महसूस होता है। मार्क्स मानते हैं कि इस शब्दस्मृतिलोप से पार पाते ही हम अपनी दुनिया के वास्तविक रूप को देखने समझने लगते हैं और इसके बाद दुनिया में हमारा स्थान पहले से कहीं बेहतर होने की ओर बढ़ने लगता है। वस्तुतः दृष्टिकोण का यह बदलाव समाज, सामाजिक और राजनीतिक कार्यों पर हमारी पकड़ को मजबूत करने के साथ यह तय करता है कि बेहतर व्यवस्थाओं के लिये हमें क्या–क्या बदलाव करने चाहिये। इस विचार के केन्द्र में यह विरोधाभास भी है कि वस्तुएं वे उत्तेजक चीजें हैं, जो एक ही समय में अतिसंवेदनशील और सामाजिक भी हैं। मार्क्स कहते हैं कि श्रम के ये उत्पादन अवास्तविक नहीं हैं, क्योंकि वे मनुष्य द्वारा विशिष्ट कार्य अभ्यास का परिणाम हैं। पूंजीवादी दुनिया एक ओर एक वस्तु या एक प्रक्रिया है जिसके परिणामों का मूल्यांकन–निरीक्षण संभव है, वहीं यह आभासी भी है, जिसका निरीक्षण संभव नहीं है। यहां हमें वैश्विक अनुभव और उत्पादन को एकसाथ लेकर गूढ़ परिणाम तक पहुंचने की आवश्यकता होती है, जैसा मार्क्स के 50 साल बाद के क्वांटम सिद्धांतकारों ने किया। उन्होंने अणु कणों की स्थिति को लेकर जो परिणाम हासिल किये, वह पूंजीवादी व्यवस्था में मार्क्स के दोहरे परिणाम की याद दिलाते हैं। क्वांटम सिद्धांत के अनुसार स्थानिक विसारक तरंगें और स्थान विशिष्ट कण आपस में टकराते हैं, लेकिन उनका सहअस्तित्व बना रहता है। यहां मार्क्स के अनुरूप तरंगों के स्थान पर प्रक्रियाओं और कणों के स्थान पर वस्तुओं को रखकर देखें तो समान रूप से विद्यमानता एवं निर्धारक व्यवहार को समझा जा सकता है। बोर और हाइजेनबर्ग की तरह मार्क्स ने वस्तु से उद्देश्य के विभाजन, प्रभावी कारकों के जरिये वास्तविकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। संक्षेप में मार्क्स यह मांग करते हैं कि हम समग्र स्वरूप में अनुभव और अपरिवर्तनीय प्रक्रियाओं को समझने की ओर बढ़ें।

20वीं सदी के कुछ कल्पनाशील मार्क्सवादी विचारकों ने इसी पहलू का सहारा लिया। जॉर्ज लुकास अपने चर्चित शोधपत्र "Reification and the Consciousness of the Proletariat" में इतिहास और वर्ग विभाजन की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। वह लिखते हैं कि यहां हमारा लक्ष्य स्वयं को मार्क्स के आर्थिक विश्लेषण पर आधारित रखते हुये वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति से उपजने वाली समस्याओं पर चर्चा करना है, जिसमें वस्तुपरक स्वरूप एवं इससे जुड़े व्यक्तिपरक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाये। दशकों बाद मार्क्सवादी नगरीय विशेषज्ञ लीफेवर ने भी स्थान के उत्पादन पर चर्चा करते हुये द्विपक्षीय विश्लषण किया।

4.3 नगरवाद के जरिये मार्क्सवाद की पुनर्परिभाषा (Redefining Marxism via Urbanism)

जेफ्री सी आईजेक (1987: Power and Marxist theory: a realistic view, 215-217, Cornell University press, Ithaca) तर्क देते हैं कि स्थान को वस्तुओं के रूप में, भवनों, स्मारकों, सार्वजनिक स्थलों, प्रतिवेश और नगरीय अवस्थापना को सिर्फ स्थानपरक वस्तुओं के रूप में नहीं देखना चाहिये। इसके बजाय इनकी मौलिकता पर विचार करते हुये इन वस्तुओं के मूल तक पहुंचना चाहिये, जैसाकि मार्क्स ने भी सलाह दी थी। वह बताते हैं कि स्थानिक महत्व में अव्यक्त सामाजिक संबंधों (वर्ग संबंधों सहित) के खुलासे और स्थान उत्पादन व इनसे जुड़े सामाजिक संबंधों (जो उत्पादन प्रक्रिया में विशेष अंतर्विरोधों को जन्म देते हैं) पर ध्यान देने के बजाय हम स्थान को ही महत्व देने लगते हैं। हम स्थानिकता के पहलू से ही विचार करने लगते हैं और इस तरह वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति की तरह यहां स्थान के प्रति अंधश्रद्धा का शिकार हो जाते हैं।

निराकार स्थान और गैर लाभ–हानि के रूप में नगरीकरण का अब कोई विकल्प नहीं है। नगरीय गतिशीलता हमेशा असमान रूप से ही उभरती है। उद्योगों में भाई–भाई की प्रतिद्वंद्विता की ही तरह नगरों के बीच भी प्रतिद्वंद्वात्मक संघर्ष जन्म लेता है। नगरीकरण में प्रतिद्वंद्विता एक ऐसा अनिवार्य बल बन गया है जो नगरों को नैतिकता के अभाव की ओर ले जाता है। ऐसी स्थिति में वॉल स्ट्रीट वह अदालत बन जाती है, जहां विजेता और हारने वाले का फैसला किया जाता है। मूडी जैसी निवेश एजेंसी हर वक्त किसी शहर पर यह देखने के लिये नजर बनाये रखती है कि वह व्यापार के लिये उपयुक्त है या नहीं, वहां 'विकास' की संभावनाएं हैं या नहीं, नगर की उधार लेने की कितनी क्षमता है, वह आर्थिक रूप से कितना गतिशील हो सकता है। इस सबके बीच डो (एक अमेरिकी बाजार सूचकांक) जहां लगातार 'मोटा' होता जा रहा है, अमेरिकन उद्योग और इनसे जुड़े शहर कमजोर होते जा रहे हैं। और यह कमजोर नगरीकरण मौजूदा अमेरिकी नगरों की परिस्थितियों और यहां रहने वाले लोगों के अनुभवों को भी स्पष्ट करता है।

दुर्बल नगरीकरण नवउदारवादी नगरीय नीतियों की प्रक्रिया का अपरिहार्य परिणाम है। यह ऐसा नगर है, जिसका आकार लगातार घट रहा है और जो व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित हो जाता है। इसकी स्थिति के पैमाने में बजट संतुलन की क्षमता, सेवा प्रावधानों में वृद्धि और न्यूनतम लागत हैं। वस्तुतः लागत में कमी ही नगरीकरण का मुख्य मानक है। नगरीय परिषदें हमेशा से ही कॉरपोरेट बोर्ड की नकल करने का प्रयास करते रहे हैं। अपने कॉरपोरेट प्रतिद्वंद्वियों के समान ही उन्होंने भी बेहद तेजी से आउटसोर्सिंग रणनीति अपनानी शुरू कर दी है। इसके तहत चौकीदारी, साफ–सफाई, गलियों के रखरखाव, डाटा प्रोसेसिंग, छोटी प्रशासनिक इकाइयों आदि के काम के लिये अनुबंध के आधार पर सेवाएं ली जा रही हैं। नगर पालिकाओं में भी निर्माण कार्यों के लिये टेंडरिंग के जरिये प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा दिया जाता है। वार्षिक परिणामों में कटौती, अकसर गैरसंघीय निजी फर्मों को आकर्षक सार्वजनिक कार्यों के ठेके मिलना आदि के जरिये शहरी शासन बेहद मामूली दरों पर श्रमिकों की मांग करता है, जबकि उनके श्रम की बदौलत स्वयं पूंजी बनाता है।

नगरों में वेतनभोगियों से मिलने वाला सार्वजनिक राजस्व वित्तीय, बीमा और रियल इस्टेट (Finance, Insurance, Real Estate: FIRE) से जुड़े अभिजात्य वर्ग तक जाता है। इस तरह बिल्डर, निवेशक

और डेवलपर विशेष सुविधाओं, करों में छूट आदि का लाभ लेकर वित्तीय जोखिम से बचे रहने के लिये धन हासिल करते हैं और यह प्रक्रिया नगरीकरण को कॉरपोरेट की मदद की ओर झुकाती है। दुर्बल नगर उत्पादन और नगरीय स्थान के पुनर्निर्माण में धन के पुनर्प्रवाह का साधन बनते हैं, जिसे हेनरी लेफेवर ने पूंजी का दूसरा चक्र यानी "secondary circuit of capital" बताया है। शॉपिंग मॉल, ऑफिस ब्लॉक, कॉरपोरेट गढ़, स्पोर्ट्स स्टेडियम आदि ढांचे नगरों में विकसित होते हैं। सजीव श्रम (परिवर्तनीय पूंजी) से निर्मित लागत बचत को स्थायी माना जाता है, जिसे मूल आधार से अलग ठोस ढांचों में पर्दों में रखा जाता है। यहां सजीव श्रम और स्थान में उपलब्ध निर्जीव श्रम रूपी वस्तुओं के प्रति अंधभक्ति या अत्यधिक लगाव की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसे अति संवेदनशील, गैर अवधारणात्मक वास्तविकता के तौर पर परिभाषित किया गया है।

वाल स्ट्रीट और वित्तीय पूंजी की अतिवृद्धि ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था, श्रम और अमेरिकी नगरों के स्वरूप व कार्यशैली पर गहरा असर डाला है। मुद्रास्फीति के चलते रोजगार कभी भी छिन सकता है। मुद्रास्फीति का वर्तमान निर्धारण निश्चित रूप से इसकी अंतर्निहित शक्तियों की जानकारी देता है। मुद्रास्फीति ही वित्तीय संपत्तियों के मूल्य में वृद्धि, इसके कारण शासक वर्ग की कमजोरी और विशेषाधिकारों के बढ़ावे की वजह बनती है। संघीय व्यवस्था का झुकाव व्यवसाय और फायर (FIRE) की ओर रहता है। मुद्रास्फीति का छल और मौद्रिक मिथ्या उपचार इस झुकाव को इस तरह बनाये रखता है कि कार्यकारी परिषदें पूंजीवादियों के सामान्य मसलों के प्रबंधन और निस्तारण को तत्पर रहती हैं। यहां यह समझाने के प्रयास किये जाते हैं कि संपत्ति के मूल्यों में बढ़ोतरी करना उचित और आवश्यक है, लेकिन श्रम मूल्य में बढ़ोतरी को तुरंत मुद्रास्फीति का कारण बता दिया जाता है। यह अनुचित तर्क वास्तविक ब्याज दरों को हमेशा उच्च स्तर पर बनाये रखता है। इसके लिये वर्ग संघर्ष के रूप में निरंतर किराये में बढ़ोतरी जैसे कदम उठाये जाते रहते हैं।

शहरी कामगार वर्ग के संबंध में दो पहलू सामने आते हैं। पहला वास्तविकता और लोगों के जीवन के अनुभव तथा दुर्बल शहरीकरण के टकराव से सामने आता है। दूसरे शब्दों में प्रक्रियाएं और अनुभव किस तरह वास्तविक हो जाते हैं, 'एक्सचेंज' में होने वाले बदलाव कैसे जीवन को प्रभावित करते हैं और रोजमर्रा के उपयोग मूल्य पर लगातार असर डालते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शहरों में वर्ग (Class) शहरीकरण और शहरीवाद की भाषा में कूटरचित है। पूंजी लगातार लाभकारी उद्यमों का पीछा कर रही है, जबकि शेयर और ब्याज लाभांश किराये के लिये कमायी जाने वाली आय से समृद्ध होते जाते हैं। स्थान के उपयोग पर पूंजीवाद के किराये का जोर उसे विशेष स्थान में बदल देता है, जिसके चलते मात्रात्मक स्थान और गुणवत्तात्मक स्थान के बीच संघर्ष उपजता है। यह वह संघर्ष है, जिससे मौजूदा अमेरिकी कामगार वर्ग अपने घर और कार्यस्थल पर जूझ रहा है। वर्ग का तात्पर्य, जब कुछ लोग अपने अनुभवों (वंशानुगत या सहभागित) के आधार पर अपनी पहचान और अभिरुचियों को आपस में और उन लोगों के समक्ष महसूस व जाहिर करते हैं, जिनके विचार उनसे अलग (आमतौर पर विरोधी) हैं। यह एडवर्ड थॉमसन का प्रसिद्ध वर्ग दृष्टिकोण है जो उन्होंने The Making of the English Working Class में प्रस्तुत किया था। थॉमसन याद दिलाते हैं कि मार्क्स ने किस तरह वर्ग को किसी वस्तु के रूप में परिभाषित करने के बजाय एक प्रवाहमान संबंध के रूप में बताया। थॉमसन कहते हैं, यदि हम

इस संबंध को किसी भी क्षण रोकने या इसकी गहराई में जाने की कोशिश करते हैं तो भी यह विश्लेषण से बच निकलता है।

मार्क्स ने स्वयं वर्ग के बिन्दु पर विचार अधूरा छोड़ दिया था, उन्होंने न तो कोई समाजशास्त्रीय परिभाषा दी, न ही सामाजिक विभाजन को लेकर कोई सिद्धांत दिया। हालांकि, बाद में, जब पूंजीवादी व्यवस्था पर तार्किक मॉडल सामने आया, तब ऐतिहासिक पूर्वपदों को छोड़ते हुये एक विश्लेषणात्मक मॉडल तैयार किया गया। आजीविका कमाने का लक्ष्य (जैविक एवं भौतिक पहलुओं के साथ) वह सार्वभौमिक बिन्दु है, जो विभिन्न समुदायों, अलग–अलग वर्णों (त्वचा रंग), लिंगों, परंपराओं के लोगों को विभिन्न नगरों में, विभिन्न कार्यों में साथ ले आता है। बाल्टीमोर, डेटन, डुलुथ, दुर्हाम, जर्सी सिटी, न्यू यॉर्क, मिनीपोलिस सेंट पॉल, लॉस एंजेलेस, ओकलैंड, पोर्टलैंड आदि नगरों में यह व्यवस्था अप्रत्याशित रूप से देखी जाती है। (Hennery Lefebvre (2016), Marxist struggle and the city (in book encyclopaedia of urban studies),Sage publication)

मार्क्स कहते हैं कि यह व्यावहारिक संघर्ष, व्यावहारिक संयोजन का परिणाम है कि लोग स्वयं को नये सिरे से गढ़ने के साथ खुद की प्रकृति को और दुनिया को बदलते हैं। क्रिया व्यवहार ही वह माध्यम है जो हमें मानवीयता की ओर ले जाने के साथ एकतरफा होने से बचाता है। यह संवेदनशील बनाने के साथ, स्वयं को और अपने आसपास मौजूद अन्य लोगों को समझने के लिये आवश्यक है। मार्क्स बताते हैं कि इस सबके बीच सामाजिक संघर्ष भी पनपते रहते हैं। जीविका वेतन अभियान ने असंतोष की भावनाओं को आवाज देने के लिये एक प्रकार का राजनीतिक मंच भी उपलब्ध कराया है। कई बार यह असंतोष शहरी सार्वजनिक स्थानों में, गलियों में भी नजर आता है। यहां वेतन और आवास संबंधी शिकायतें (फ्रेडरिक एंगेल्स के अनुसार पूरे शहरीकरण के सवाल से शिकायतें) एक ऐसी सांस्थानिक संस्कृति पनपती है, जो विस्तार पर जोर देती है। शाब्दिक और राजनीतिक सन्दर्भ प्रगतिशील रणनीतियों, जैसे– जीविका वेतन (कार्यक्षेत्र में और कार्यक्षेत्र के बाहर) अभियान को बढ़ावा देते हैं। और यह गतिशीलता ही फिर सन्दर्भों को आकार देती है, जो शहरीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं और लोकतंत्र को भी गतिशीलता देते हैं।

संभवतः नगरों को ऐसे स्थानों और संस्थानों की आवश्यकता होती है, जहां यह कार्य स्वतंत्रतापूर्वक हो सके और यह कार्य नगर और इसके जीवन में हवा–रोशनी पहुंचाने का माध्यम बनते हैं। दुर्बल नगरीकरण ने अमेरिका के अधिकतर शहरों को अंधकारयुक्त और दमघोंटू बना दिया है। यहां ऐसे समरूप स्थान सर्वव्यापी हैं, जिनमें वित्तीय गतिविधियों को संचालित किया जाता है। और यदि इनके बीच कोई सार्वजनिक स्थान पनपता भी है तो वह बंजर रह जाता है और असंवेदनशीलता की सघनता को बढ़ाता है। यहां कामकाजी लोगों की भीड़ घंटों तक काम में जुटी रहती है और बदले में बेहद अल्प पारिश्रमिक पाती है, यह भीड़ इस मामूली पारिश्रमिक के लिये लंबी दूरी तय करती है। और जब वे घर लौटते हैं तो उनका वेतन किराये में ही निकल जाता है। ऐसा कम ही देखने को मिलता है कि शहरों में नैतिकता और सौंदर्यपूर्ण स्थानों का सहअस्तित्व हो, जहां जाति, वर्ग के आधार पर भेद न हो और जो

कल्पनाओं व राजनीतिक सहयोग से उन्नति की ओर अग्रसर हों और जहां विशेषाधिकार प्राप्त चंद लोगों के बजाय अधिसंख्य आबादी के लाभ की भी चिंता की जाये।

वर्ष 1844 में मार्क्स ने लिखा, वस्तुवादी दुनिया की व्यावहारिक रचना, कृत्रिम प्रकृति का निर्माण इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य जागरूक एवं प्रबुद्ध जीव है। मार्क्स इस बात पर जोर देते थे कि हम किस तरह जागरूकतापूर्वक एवं व्यावहारिकता के साथ अपनी गतिशील एवं वास्तविक दुनिया का निर्माण करते हैं। हम किस तरह बाहरी वास्तविकता और अपने विचारों के साथ संघर्ष करते हैं। मार्क्स यह भरोसा दिलाते हैं कि अगर हम सामूहिक रूप से स्वयं को और स्वयं के विचारों के अनुरूप उत्पादित करते हैं तो हम अपने जीवन का निर्माण ठीक उसी तरह कर सकते हैं, जैसा हम देखते, सोचते, महसूस करते हैं। मार्क्स के अनुसार दुनिया की सभी समस्याएं (वास्तविक सामाजिक अंतर्द्वंद्व) व्यावहारिक तरीकों –मनुष्य की व्यावहारिक ऊर्जा– के जरिये समाधानयोग्य हैं। हमारे अपने दैनिक, भौतिक उद्यम में आवश्यक शक्तियों की वास्तविकता हमारी जैविक गतिविधियों में मूर्त हैं। हमारा कठोर परिश्रम, हमारा दैनिक संघर्ष, अपने जीवन को विचारपूर्वक आकार देने की प्रक्रिया हमें विशिष्ट बनाती है और हमें अन्य जंतुओं से अलग खड़ा करती है। हम खास हैं, क्योंकि (जैसा मार्क्स कहते हैं) हम गतिशील शक्तियों से परिपूर्ण हैं। मार्क्स इस बिंदु पर जोर देते हैं, क्योंकि वह मानते हैं कि कई कामगार और अन्य लोगों के लिये इन गतिशील शक्तियों को नकारा जाता है, अनदेखी की जाती है और दबाने की कोशिश होती है। उनकी इन ताकतों को कठोर जीवनचर्या में सुप्त कर दिया जाता है। घटिया आवास, असंतुलित आहार भी ऐसे ही जरिये हैं। मार्क्स कहते हैं, संवेदनशील और वास्तविक होने के लिये व्यक्ति को अपनी सीमाओं से बाहर की संवेदनाओं तक पहुंचना होगा। संवेदनशील बाहरी दुनिया तक पहुंचना ही हमारा संघर्ष है। ऐसी दुनिया, जहां सभी लोगों से समन्वय किया जाता है, जिसे महसूस करने के लिये, वहां तक पहुंचने के लिये जुनून की आवश्यकता होती है। मार्क्स कहते हैं कि यह जुनून, जुझारूपन ही व्यक्ति की आवश्यक शक्ति है जो उसे हमेशा उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रेरित करती है। यहां वह मनुष्य के असंतुष्ट होने की विलक्षण शक्ति पर जोर देते हैं। वह बताते हैं कि भौतिक रूप से सर्वाधिक असंतुष्टि से पीड़ित लोगों को इस शक्ति से अलग किया जाता है। हालांकि, मार्क्स यहां पूंजी से इतर बात करते हैं और उनके विचार कुछ अस्पष्ट भी प्रतीत होते हैं, लेकिन यह लगता है कि वह कामगारों के जैविक–भौतिक चरित्र के बजाय स्वतंत्र जागरूक गतिविधियों के संघर्ष की बात कर रहे हैं। वस्तुनिष्ठ वास्तविकता (बाहरी उद्देश्य और दुनिया जो हमें घेरे रहती है और सामाजिक जीवन को संदर्भित करती है) मुक्त जागरूक गतिविधियों और संघर्ष को परिस्थितियों में बांधती हैं। सन्दर्भ भी इसमें बाधा बनते हैं और पूंजीवादी व्यवस्था में सन्दर्भ बड़ी आबादी के लिये यही काम करते हैं। लेकिन सन्दर्भ और पर्यावरण मुक्त जागरूक गतिविधियों को सशक्त भी बना सकते हैं, संघर्ष और मानवीय चिंतन को पोषण दे सकते हैं और उन वास्तविक शक्तियों को प्रेरित कर सकते हैं जो सही काम करने, न्याय पाने और वर्गसंघर्ष को खत्म करने में मदद करती हैं।

मार्क्स के विचार समाज और पर्यावरण में उन परिस्थितियों, संभावनाओं की जड़ों की तलाश करते हैं जो मानवीय जुनून, अभिलाषाओं, लालसा, स्वप्न देखने की क्षमता और इनके अनुरूप व्यावहारिक कार्य करने की संभावनाओं को न सिर्फ प्रोत्साहित करें, बल्कि लक्ष्य तक पहुंचायें। वह ऐसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थान की वकालत करते हैं, जहां अब तक साजिशों और डर से घिरे रहे लोगों के लिये

कुछ रोमांच की संभावना उपलब्ध हो। वह ऐसे राजनीतिक, भौतिक स्थान पर जोर देते हैं, जहां देखने, अनुभव करने, सुनने, सूंघने, इच्छा जताने, व्यवहार करने और प्रेम की भावनाएं पोषित हों और ये सभी व्यक्तिगत मानवीय अंगों के रूप में विकसित होकर सिद्धांतकार इन पर अमल करने का काम करें। यहां यह सवाल उठता है कि किसी नगर के लिये इन सब बातों का क्या अर्थ हो सकता है? संभव है कि यह काल्पनिक हो, लेकिन यह एक ऐसी व्यवस्था की ओर इशारा करता है, जहां मानवीय संघर्ष और अनुभव को महत्व मिलता हो, जहां जीवन अवास्तविक पर्दों के पीछे ढकी हुयी नहीं हो, जहां वास्तविक, भौतिक, नागरिक, सांस्कृतिक स्थान उपलब्ध हों जो विविध मानवीय इच्छाओं को पर्याप्त अवसर प्रदान करने में सक्षम हों। ऐसी व्यवस्था जहां कामगारों की दुनिया सेहतमंद हो, किसानों का ऐसा बाजार जहां भले ही फल–सब्जियां कम और गंदे हों फिर भी वे ताजे हों और उनका स्वाद बेहतरीन हो। समकालीन सुपर मार्केट चेन में इन वस्तुओं को प्रसंस्करण के नाम पर लंबे समय तक रखा जाता है, जिसके लिये सिर्फ उन वस्तुओं का चयन किया जाता है जो पूरी तरह सर्वोत्तम हों, और 'स्पेसीमेन' की तरह उनका उत्पादन किया जाता हो, लेकिन वे स्वादरहित हो जाते हैं। मार्क्स ऐसे पर्यावरण के विकास पर जोर देते हैं जो हमारी संवेदनाओं को बढ़ावा देता है, उन्हें समृद्ध, जागरूक और वास्तविक जीवन के प्रति और अधिक खुला बनाता है। ऐसा समाज, ऐसा नगर और ऐसा पर्यावरण संभव है कि कुरूप हो, लेकिन यही हमारे अभीष्ट इच्छाओं, संघर्षों और सपनों को पूरा करेगा।

मार्क्स हमें अपने लिये स्वतंत्र, खुले समाज की कल्पना करने की चुनौती देते हैं, जो सबके लिये समान हो, वर्गविशेष के लिये नहीं, जहां अवसरों की पर्याप्त उपलब्धता हो, जहां किसी का एकाधिकार न हो। मार्क्स नगरों के भविष्य की चिंता करने वालों को भी चुनौती देते हैं कि वे ऐसे नगरीकरण का निर्माण करें, जो खुला हो और जहां इच्छाओं–जुनून का प्रोत्साहन हो। यही विचार माइक डेविस की हालिया पुस्तक 'Latino Populations In The Big US City, Magical Urbanism' में नजर आते हैं। माइक इस बात पर जोर देते हैं कि लैटिन लोगों को अमेरिकी नगरों के भविष्य की बहस के केन्द्र में रखा जाये। ये वे लोग हैं, जिन्होंने एंग्लो मध्यवर्गीय लोगों द्वारा छोड़े गये नगरीय इलाकों को फिर आबाद किया है। इन गुमनाम नायकों की लघु उद्यमिता उस लंबे संघर्ष की कहानी है, जिसके जरिये उन्होंने अपने असल घरों से दूर अपने नये घर विकसित किये। फ्लोरेंस, वेर्नोन, वॉट्स और लॉस एंजेलस के पुराने औद्योगिक क्षेत्र में पुराने घरों को इन लोगों ने चमत्कारिक रूप से पुनर्जीवित किया, मरम्मत की, टपकती छतों, घिस चुके अगले हिस्सों, बरामदों का पुनर्निर्माण किया और कैक्टस–झाड़ियों से भर चुके आंगनों को फिर हरा–भरा किया। डेविस बताते हैं कि यह मेक्सिको और सेल्वाडोर के लोगों की उद्यमशीलता थी कि उन्होंने खतरों को जानते हुये भी चुनौती स्वीकार की, भूमि अधिकार न होने, नागरिक तौर पर उपेक्षा होने और बेहद न्यून संसाधनों के बावजूद परस्पर सहयोग से आवास तैयार किये। ये निडर आवास निर्माता अपने घरों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि नगरीय सार्वजनिक स्थानों के उपयोग और निर्माण में भी उन्होंने योगदान किया है। लैटिन लोग गलियों में घूमना–फिरना पसंद करते हैं और जीवन को खुलकर जीते हैं, यह अलग बात है कि अब तक उन्हें अमेरिकी नगरों की बदनाम प्रजातियों के रूप में ही जाना गया है। एंग्लो परिवारों ने खुद को एकल घरों तक ही सीमित कर लिया है। उनका जीवन जहां निरुत्साहित सा नजर आता है, वहीं डेविस के अनुसार लैटिन लोग ऊर्जापूर्ण और भरपूर शहरी जीवन चाहते हैं। लैटिन लोगों का यह व्यवहार बताता है कि किस तरह अमेरिकी

महानगरीय लोगों के निराशायुक्त जीवन को रचनात्मकता और संघर्षपूर्ण गतिविधियों के जरिये फिर उत्साह से भरा जा सकता है।

मार्क्स अपने जीवनकाल में यह सब नहीं देख सके, लेकिन वह जानते थे कि यही वह मुख्य कारण है, जिसके कारण उपेक्षित और असंतुष्ट लोग बड़े शहरों की ओर आकर्षित होते हैं। न्यू यॉर्क, लॉस एंजेल्स जैसे बड़े नगर मानवीय संपर्क के बड़े केन्द्र बन जाते हैं, जहां संघर्ष के जुनूनी केन्द्रों के तौर पर लोग अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिये निरंतर संघर्ष करते हैं। वास्तविक जीवन इन नगरों के सूक्ष्म केन्द्रों में रहता है। ऐसे में समाजवाद के समुचित विकास के लिये इन सूक्ष्म केन्द्रों को वृहद् स्वरूप देने की आवश्यकता है। यहां मार्क्सवादियों के लिये निर्देशात्मक सुझाव मिलते हैं। संघर्ष और अंतर्विरोध का आमतौर पर अर्थ खतरे से होता है, कई बार अन्याय, मृत्यु भी इसके अर्थ बन जाते हैं, लेकिन हमेशा यह जीवन को स्पष्ट करता है और मानवीय असंतुष्टि को समझाता है। विडंबना यह है कि ये सभी पहलू ही जीवंत नगरीकरण के अहम बिंदु बन गये हैं, जिसके चलते महानगरों में ऊजा समस्याग्रस्त नजर आती है। कोई भी पहले से यह नहीं जानता है कि उसके संघर्ष का अंत कहां पर होगा या शहरीकरण और शहरीवाद कब श्रेष्ठता को हासिल कर पायेंगे। यहां यह महत्वपूर्ण है कि असंतुष्टि की इस भावना को सही दिशा में संचालित किया जाये, सही दुश्मन की पहचान हो और रचनात्मक रूप से निरंतर इसे आगे बढ़ाया जाये। मार्क्स कहते हैं कि हमारे पास पर्याप्त मात्रा में श्रमिक, सामुदायिक संगठक, विभिन्न बुद्धिजीवी, प्रतिबद्ध नागरिक, कामगार, दैनिक वेतनभोगी हैं, जो इस तरह की परिस्थिति को बेहतर समझ सकते हैं और पूर्ववर्ती अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं के विश्लेषण के साथ ऐसे वास्तविक स्थानों का निर्माण करने की दिशा में काम कर सकते हैं, जहां लोगों के लिये जीवन के बेहतर अवसर उपलब्ध हों।

1960 के बाद मार्क्सवाद और नगर पर काम करने वाले तीन अहम शोधकर्ता हेनरी लीफेवर, डेविड हार्वे और मैनुएल कैस्टेल्स हैं। उनका अध्ययन स्थान की अवधारणा में नगरों के केन्द्र को मार्क्सवाद के बुनियादी प्रस्ताव के रूप में स्थापित करता है। 1980 में डेविड हार्वे और कैस्टेल्स के अध्ययन से साफ हुआ कि मार्क्सवादी नगरीय सिद्धांत की सीमाएं मुख्यतः विषयवस्तु की न्यूनता, इतिहास के साथ संयोजन का अभाव और मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत के केन्द्रीय मुद्दों (आधार, ढांचा, एजेंसी आदि) पर प्रतिबंध रहीं। इन परतों के चलते ही मार्क्सवाद गतिरोध की स्थिति में पहुंच गया, जिसे हार्वे ने 'मार्क्सवादी भूलभुलैया' करार दिया है, जबकि कैस्टेल्स ने सकारात्मक रूप में इसे 'नया अस्तित्व' बताया है। हार्वे ने अपनी पुस्तक *social justice and the city* में शहरी घटनाक्रमों को मार्क्स के तरीकों से देखने के परिणामों, लाभ–हानियों के बारे में विस्तार से बताया है। यहां वह हेनरी लीफेवर के साथ सहमत नजर आते हैं और बताते हैं कि मैं सिर्फ हेनरी लीफेवर के कार्य पर भरोसा कर सकता हूं। हार्वे ने पाया कि मार्क्सवादी सिद्धांत सामाजिक प्रक्रियाओं और स्थानिक स्वरूपों के संबंध को स्थापित करते हुये विश्लेषण का बेहतर ढांचा दे सकता है। इसी तरह कैस्टेल्स ने नगरीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिये सैद्धांतिक विकास किया। उन्होंने भी हेनरी लीफेवर की सराहना करते हुये लिखा है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन बुद्धिजीवियों ने आज के दौर की शहरी समस्याओं को समझने के तरीकों की बुनियाद पहले ही रख दी थी।

4.4: निष्कर्ष (Conclusion)

गिडन्स को छोड़कर अधिकतर शोधकर्ताओं ने मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत का नगरवाद में स्थान के विचार से वर्णन किया है। मार्क्सवादी सामाजिक सिद्धांत नगर के विचार से जुड़ जाता है और यह 16वीं सदी के बाद पूंजीवाद तथा नगरों के इतिहास के साथ अच्छी तरह संबद्ध, युक्तिसंगत लगता है। ऐसे में यह माना जा सकता है कि एक विचार के रूप में नगरों के अध्ययन के लिये मार्क्सवाद उपयुक्त हो सकता है।

4.5 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

- नगरों पर मार्क्सवाद की बुनियादी अवधारणा क्या है?
- नगरों के विषय में मार्क्स के विचार की समालोचना करें।
- मार्क्स के बाद के काल में मार्क्सवादी विचारकों द्वारा किये गये विश्लेषण पर प्रकाश डालें।

4.6 सहायक अध्ययन सामग्री

- Katznelson Ira (2005), Marxism and the City, oxford publication, New York
- Jeffery C. Isaac (1987), Power and Marxist theory: a realistic view, 215-217, Cornell University press, Ithaca

इकाई–5

नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत, भारत में नगरीय शासन
(Meaning and Principle of Urban Governance, Urban Governance in India)

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास

5.3 नगरीय शासन का अर्थ एवं सिद्धांत

5.4 भारत में नगरीय शासन

5.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण

5.6 मुद्दे एवं दृष्टिकोण

5.7 निष्कर्ष

5.8 अभ्यास प्रश्न

5.9 भावी अध्ययन

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे कि–

1. नगरीय शासन क्या है?
2. भारत में नगरीय शासन विकास कैसे हुआ?
3. भारत के संदर्भ में नगरीय शासन` अर्थ, सिद्धांत और कार्य।
4. भारत में नगरीय शासन से जुड़े प्रमुख मुद्दे।

5.1 परिचय (Introduction)

भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। नयी सहस्राब्दी के मौजूदा दौर में 30 करोड़ से अधिक भारतीय 3700 से अधिक कस्बों और नगरों में रहते हैं। 1947 में भारत की आजादी के वक्त यह संख्या

60 लाख ही थी। (chakrabati). पिछले 50 साल में भारत की आबादी ढाई गुना से अधिक बढ़ी है, लेकिन नगरीय भारत का विकास पांच गुना से अधिक हुआ है। आंकड़ों के लिहाज से देखें तो भारत में नगरीय आबादी दुनिया में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। यही नहीं, भारत की जनसंख्या फ्रांस, जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम की संयुक्त जनसंख्या से भी करीब दोगुनी है।

वर्ष 2018 के आंकड़े बताते हैं कि एशिया में नगरीय आबादी की प्रतिशतता 48.6 प्रतिशत है, जबकि भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 31.6 फीसदी शहरों में रहती है। शहरीकरण के विकास के साथ प्रशासनिक विकास की भी जरूरत महसूस होती है। यही वजह है कि शहरों में नगरीकरण की व्यवस्था स्वतंत्र शाखा के रूप में उभरी। इसका सिद्धांत सामाजिक अध्ययन का एक प्रचलित माध्यम बन गया है, जिससे न सिर्फ शहरीकरण की तेज गति बल्कि नगरीय भारत के संदर्भ में आवश्यक प्रेरणा को समझने का प्रयास किया जा सकता है (kundu,2011). सार्वजनिक प्रशासन तंत्र के एक हिस्से के रूप में उभरा नगरीय शासन स्वयं में एक विशेष क्षेत्र बनकर उभरा। नगरीय प्रशासन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के निस्तारण के लिये इसके साथ विशेष व्यावहारिकता की आवश्यकता होती है। नगरीय विकास प्रबंधन से शहरीकरण, पर्यावरणीय विचार, नगरीय राजनीति, नगरीय अवस्थापना ढांचा, नगरीय नियोजन, अनौपचारिक क्षेत्रों के विकास आदि मुद्दों का हल निकाला जा सकता है (Rao, 2015). इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सक्षम, प्रभावी और जिम्मेदार नगरीय स्थानीय प्रशासन की स्थापना जरूरी है। 1992 में भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में नगर निकायों को नगरीकरण के तीसरे स्तर के रूप में परिभाषित किया गया है और इन्हें सांस्थानिक ढांचे में उपयुक्त शक्तियां भी प्रदान की गयी हैं। इस संविधान संशोधन ने भारत में नगरीय शासन की अवधारणा को विस्तार दिया। नगरीय नगरीकरण की विशेषता इसका नागरिक केन्द्रित दृष्टिकोण और ऐसे मसलों का निस्तारण करना है जो मांगों से उभरते हैं। नगरीय क्षेत्र उत्पादन और बाजारी गतिविधियों के जरिये किसी राज्य के राजस्व में भी महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

हालांकि, 19वीं सदी के भारतीय विद्वानों ने नगरीय शासन और राजनीति को तुच्छ एवं अप्रासंगिक मानते हुए नकार दिया था। (Leonardo, 2008). इनमें से अधिकतर ने यह निष्कर्ष उच्चाधिकारियों के निजी दस्तावेजों, भारत सरकार की रिपोर्ट आदि के जरिये लंदन और दिल्ली में नीतियों के निर्धारण के अध्ययन के बाद निकाला। तत्कालीन ब्रिटिश नीतियों में बताया गया था कि 'स्थानीय स्वायत्त नगरीकरण एक ऐसा पेड़ है, जिसकी जड़ें कभी मजबूत नहीं होतीं। ऐसे में आधुनिक भारत की राजनीति में इस तरह की व्यवस्था का पहचान नहीं पा सकी।' अन्य विद्वान स्थानीय स्वशासन की विफलता के कारण गिनाते हुए कहते हैं, 'निगरानी का ऐसा कठोर तंत्र विकसित किया गया था, जो सबसे छोटे नगर निकाय से लेकर भारतीय संघीय सचिव तक जाता था।' इस गैरजरूरी नियंत्रण और बजट के अभाव के कारण जनसुविधाओं के अवसर खत्म होते गये। नगर निकायों की इस बेरंग तस्वीर में कुछ सुधार तब हुआ, जब 1899 में लॉर्ड कर्जन ने भारत में बतौर वायसराय जिम्मा संभाला। कर्जन ने स्थानीय नगरीकरण को गतिशील और प्रभावी बनाने के प्रयास किये। यद्यपि स्थानीय स्वशासन की नीतियां न तो आधिकारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में ही सक्षम थीं, न ही राष्ट्रवादी विचारों को बढ़ावा देने के योग्य, फिर भी निरंतर मूल्यांकन और संशोधनों के जरिये यह स्थानीय राजनीति और प्रशासन के लिये पोषक बन गयी।

5.2 भारत में नगरीय शासन का इतिहास (History of Urban Governance in India)

सिंधु घाटी सभ्यता को आदिम युग की सबसे परिष्कृत, व्यवस्थित और सुनियोजित नगर व्यवस्था माना जाता है। फेयरसर्विस (1971) ने मोहनजो–दारो को महान सभ्यता बताया है। वह कहते हैं कि यदि मोहनजो–दारो में 40 हजार के करीब आबादी के रहने का वैज्ञानिकों का अनुमान सही है तो नगर को अजेय बनाये रखने, वहां सामने आने वाली समस्याओं के निस्तारण और लोगों पर नियंत्रण के लिये कोई न कोई प्रशासनिक व्यवस्था भी अवश्य रही होगी, जो केन्द्रीकृत रूप से पूरे नगर का प्रतिनिधित्व करती होगी। अलग–अलग दौर में नगरों की भूमिका लोगों के कल्याण के लिये सुविधाएं मुहैया करवाने की रही। यहां हम विभिन्न काल में नगरों में नगरीकरण व्यवस्था के बारे में जानेंगेः

मुगलकाल (The Mughal Period)

मुगलकाल में प्रशासनिक तंत्र का संचालन कोतवाल करता था। आईन–ए–अकबर में अब्दुल फजल ने नगरों के आठ कार्यों की जानकारी दी है। इनमें चोरों की पहचान करना, दामों पर नियंत्रण रखना और तौल–माप की निगरानी करना, नगर में रात्रि गश्त, नगर में घरों की पूरी जानकारी रखना, अनजान लोगों पर नजर रखना, बेघर लोगों में से चुनकर जासूसों की नियुक्ति करना, गुमशुदा लोगों के सामान–संपत्ति को संरक्षा में रखना, पशुधन को मारने पर रोक लगाना (गाय, बैल, भैंस) और महिलाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध जलाये जाने से रोकना (सती करना) शामिल हैं (Fazal,1949). मजूमदार (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि कोतवाल का एकमात्र कार्य लोगों की संपत्ति की रक्षा और नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना था। यद्यपि कोतवाल लोगों की अन्य सुविधाओं के लिये भी कार्य करते थे, लेकिन यह तंत्र कैसे काम करता था, इसका कोई दस्तावेजीकरण उपलब्ध नहीं है। हालांकि, मुगल काल के बाद के दौर में यह प्रशासनिक व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। मजूमदार बताते हैं कि मुगल नगरीकरण के विघटन और उस दौर में मची उथल–पुथल में यह स्वशासन संस्था नगरों और गांवों से पूरी तरह खत्म हो गयी। (ibid).

दूसरा चरण (Phase 2) 1688–1882

यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल में कई विकासपरक कार्यक्रम संचालित किये गये, लेकिन नगरीय शासन के पुनर्गठन को लेकर कोई कदम प्रारंभ में नहीं उठाया गया। हालांकि, 1688 में पहली बार मद्रास सिटी में नगर निकाय बनाया गया, जिसका उद्देश्य चार्टर 1687 के तहत ब्रिटेन में तय नीतियों का पालन करना था। नगर निकाय के गठन का मुख्य मकसद लगान, कर की वसूली और भारत के शिक्षित लोगों की मदद से राजनैतिक लक्ष्य हासिल करना था। जनसुविधाओं के नाम पर तब पांच शिलिंग (तत्कालीन ब्रिटिश मुद्रा) कर वसूला जाता था, लेकिन निरंकुश नगरीकरण ने इस पर भी छह पेंस बढ़ा दिये थे (Maheswari, 2000). निकाय गठन के अन्य कारणों में स्थानीय संस्थानों में नागरिक और सफाई संबंधी कार्यों को लागू करना था। वर्मा (1998) के अनुसार इसका उद्देश्य महामारी पर रोकथाम और नाले–नालियों की व्यवस्था, पेयजल वितरण व्यवस्था व राजकोष को बढ़ाना था। लेकिन स्थानीय शासन

को न तो कभी पूर्ण सक्षम बनने दिया गया, न ही उसे 'वीटो' शक्ति दी गयी। उनके वित्तीय संसाधन बेहद सीमित थे और उन पर जिला कलेक्टर का नियंत्रण था।

1726 में नगर निकायों को मेयर कोर्ट का स्वरूप दिया गया, जिसे निश्चित न्यायिक अधिकार और शक्तियां प्रदान की गयीं। इससे निकाय को प्रशासनिक–न्यायिक स्वरूप मिला। भारत में 1793 में चार्टर एक्ट 1793 के पारित होने के बाद निकायों को वैधानिक श्रेणी दी गयी। इस एक्क्ट के तहत तीन निकाय मद्रास, कलकत्ता और बंबई का गठन किया गया। इन निकायों को करवसूली का अधिकार प्रदान किया गया। यद्यपि प्रारंभ में भारतीय नागरिक नगर निकाय की इन व्यवस्थाओं पर मोहित दिखे, लेकिन राष्ट्रवादी विचारधारा के उभार ने उनमें स्वनिर्धारित व्यवस्था के विकास के लिये संघर्ष को प्रेरित किया। इस तरह स्थानीय निकायों की शुरुआत से ही वे ब्रिटिश नगरीकरण से पृथक्कीकृत होने लगे। वायसराय काउंसिल के सदस्य सैमुअल लैंग ने बजट भाषण में स्थानीय निकायों के जरिये स्थानीय संसाधनों के उपयोग की वकालत की। 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में स्थानीय निकायों के लिये चुनाव प्रक्रिया प्रारंभ करने की बात कही गयी। इस प्रस्ताव में नगर निकायों को वीटो जैसी शक्तियां प्रदान की गयीं, जिससे स्थानीय निकायों के कार्यों और वित्तीय विकेन्द्रीकरण को बल मिला। हालांकि, यह प्रस्ताव नगरीय और ग्रामीण दोनों तरह के निकायों पर लागू था, लेकिन इसके कोई निश्चित मानक और सिद्धांत तय नहीं थे।

लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव के बाद का काल (Post Lord Rippon Resolution Period)

लॉर्ड रिपन ने ईमानदारी से उन कमियों को दूर करने का प्रयास किया, जो पहले नगर निकायों के प्रशासन में सामने आयी थीं। यही वजह है कि उन्हें नगरीय स्थानीय नगरीकरण का जनक माना जाता है, क्योंकि उन्होंने ही स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को पुष्ट किया। लॉर्ड रिपन ने इस बात पर जोर दिया कि स्थानीय स्वशासन का एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को अनी समस्याओं, मसलों के समाधान और निस्तारण के प्रबंधन के लिये योग्य बनाना था। लॉर्ड रिपन के अनुसार, 'मैं भारतीय समुदाय से बुद्धिमान, प्रभावी लोगों का चयन कर उन्हें क्रमिक प्रशिक्षण देना चाहता हूं, ताकि वे स्थानीय मामलों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से सहभागिता निभा सकें।' रिपन ने इस बात पर स्पष्ट रूप से जोर दिया कि उनकी ओर से प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की जो सिफारिश की गयी है, उसका मकसद प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना नहीं, बल्कि राजनीतिक और लोकप्रिय शिक्षण के साधन के तौर पर स्थानीय नगरीकरण को बतौर साधन प्रयोग करना है। स्थानीय स्वशासन की स्थापना का विचार नया नहीं था। भारत के बड़े शहरों में नगर निकाय पहले से थे, लेकिन वहां नगर आयुक्त की नियुक्ति सरकार यानी ब्रिटिश नगरीकरण द्वारा ही की जाती थी। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी सफाई, सड़क निर्माण, शिक्षा आदि मुद्दों के समाधान के लिये समितियां बनायी गयी थीं। लेकिन यहां भी आधिकारिक नियंत्रण और निगरानी बना रहता था। चूंकि अधिकारियों के नियंत्रण में जो समितियां आती थीं, उनका दायरा बहुत बड़ा था। इसके अलावा अधिकारी अलग–अलग स्थानों पर लोगों की अलग–अलग जरूरतों से भी अधिक वाकिफ नहीं थे। ऐसे में लॉर्ड रिपन ने 1882 में अपने प्रस्ताव में इन सब बाधाओं को दूर कर स्वशासन को और अधिक स्वायत्त बनाने का प्रयास किया।

ग्रामीण क्षेत्रों में जिला परिषद और स्थानीय परिषद के प्रतिनिधि स्वरूप में तहसील और तालुक स्थापित थे। यहां सदस्य नगरीकरण द्वारा मनोनीत किये जाने के बजाय लोगों द्वारा चुने जाने थे। इसी तरह नगरों में नगर निकायों की शक्तियां और जिम्मेदारियां अधिक थीं। वहां कुछ सदस्यों का सीधा निर्वाचन और कुछ का नगरीकरण द्वारा मनोनयन करने की व्यवस्था दी गयी। अध्यक्ष के गैर अधिकारी होने पर जोर दिया गया। इसी तरह मनोनीत सदस्यों की संख्या कुल सदस्य संख्या की एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये। स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, संचार का प्रबंधन स्थानीय निकायों को सौंपा गया। उन्हें निश्चित वित्तीय अधिकार दिये गये, जबकि नगरीकरण यानी सरकार को निगरानी का अधिकार दिया गया। स्थानीय निकायों को सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र रखा गया, लेकिन यदि निकाय अपने कार्य और जिम्मेदारियों का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाते तो उन्हें भंग करने का अधिकार सरकार को था। हालांकि, सामान्यतः सरकार स्थानीय निकायों के मामलों में दखल नहीं देती थी। 1883–85 में स्थानीय स्वशासन एक्ट भारत के विभिन्न प्रांतों में पारित किया गया। पथप्रकाश, गलियों की सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल वितरण आदि कार्य मद्रास, पंजाब और बंगाल के स्थानीय निकाय शासनों को सौंप दिये गये।

भारत सरकार एक्ट (Government India Acts) 1919, 1935

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद का काल भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के लिये वरदान साबित हुआ, क्योंकि इसी दौर में स्वायत्त राज्य और संवैधानिक व्यवस्थाओं में सुधारों की मांग तेजी से उठी। भारतीय लोग मॉर्ले–मिन्टो सुधारों से संतुष्ट नहीं थे। सिंह (2000) बताते हैं कि प्रशासनिक शाखाओं में भारतीयों के बढ़ते प्रभाव और स्वायत्त नगरीकरण संस्थाओं के क्रमिक विकास ने भारतीयों को उत्तरदायी भारत सरकार की मांग के लिये प्रेरित किया। इसके पीछे मूल विचार यह था कि भारतीयों को भी विकास का अवसर मिलना चाहिये।

भारतीयों को उन्नति के अवसर प्रदान करने की सकारात्मक सोच के साथ ब्रिटिश नगरीकरण ने सरकार के जनकार्यों से जुड़े अधिकारों को कम कर स्थानीय निकायों को ये अधिकार दिये। इस तरह मोंटेग–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुयी। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने 16 मई 1918 को सरकार के गैरजरूरी नियंत्रण को कम करने और सरकार व स्थानीय निकायों के बीच कार्यों के विभाजन को पुनर्निर्धारित करने की नीति लागू करने की घोषणा की। एक्ट 1920 में लागू हुआ, जिसके तहत स्थानीय निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सड़क, कृषि, स्थानीय निर्णयों समेत कई अधिकार पहले से अधिक स्वायत्त रूप में दिये गये। इस तरह कई संशोधनों से होते हुए स्थानीय निकाय स्वतंत्र नगरीकरण की स्थिति तक पहुंचे। निकायों में नगरीकरण के लिये किये जाने वाले मनोनयन की पूर्ववर्ती प्रक्रिया भी धीरे–धीरे समाप्त होती गयी।

पुनर्निर्माण काल (Period of Reconstruction) 1935–1949

1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने स्थानीय नगरीय इकाइयों को नवीनीकृत किया। इस एक्ट ने स्थानीय निकायों को और शक्तिसंपन्न करने के साथ प्रांतीय प्रशासन को स्वायत्त बनाते हुए द्वैध नगरीकरण (Diarchy) व्यवस्था को समाप्त किया। हालांकि, पूर्ववर्ती संशोधनों की तरह 1935 के

इस एक्ट से भी बहुत करिश्माई बदलाव नहीं आये, लेकिन तुलनात्मक रूप से पिछले एक्ट के मुकाबले इसने स्थानीय नगरीय निकायों में विकास को बढ़ावा दिया।

स्वतंत्रता पश्चात व्यवस्था (Post Independence Setup) 1950 और आगे

1950 में भारतीय संविधान के लागू होने के बाद का काल स्थानीय नगरीकरण के लिये बेहतर रहा। संवैधानिक संशोधनों के जरिये स्थानीय निकायों को राज्य सूची में शामिल किया गया। इसके अलावा राज्य नीतियों के नीतिनिर्देशक तत्वों के अनुरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना में नगरों के नगरीय नियोजन और विकास को प्राथमिकता में रखा गया। हालांकि, नगरीय क्षेत्रों की प्रगति ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले धीमी थी, इसकी वजह यह थी कि लोकतंत्र जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है और उस दौर में दो तिहाई से अधिक आबादी गांवों में ही रहती थी। यही वजह थी कि दो पंचवर्षीय योजनाओं के बीत जाने के बाद ही नगरीय व्यवस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सका। 80 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था ने उदारीकरण की ओर पहला कदम बढ़ाया और नगरीय नीतियां आर्थिक नीतियों में शामिल हो गयीं। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में एक कदम और बढ़ाया गया, जब नगरीय विकास की प्रक्रिया में निजी उपक्रमों को निवेश की संभावनाएं दी गयीं। योजना में आवास संबंधी सभी नीतियों को पुनर्गठित कर आमूल परिवर्तन किया गया और आवास निर्माण संबंधी जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को दी गयी। इस प्रक्रिया में सरकार की भूमिका सिर्फ आवासीय सुविधाओं के लिये जरूरी संसाधन उपलब्ध कराने, गरीबों के लिये सब्सिडाइज्ड आवास तय करने और निर्माण कार्यों को सुचारु रूप से संपन्न कराने हेतु अधिग्रहण के माध्यम से भूमि उपलब्ध कराने तक ही रखी गयी। (GoI: 7th Plan).

आवासीय क्षेत्रों में निवेश और बाजारी मांग को देखते हुए नेशनल हाउसिंग बैंक की स्थापना की जरूरत इस योजना में जतायी गयी। इसके अलावा इसमें National Urban Infrastructure Development Finance Corporation की स्थापना पर भी जोर दिया गया, जिससे स्थानीय निकायों की अवस्थापना विकास की क्षमता को बढ़ायी जा सके, जिसमें विशेषतः जल वितरण, सीवरेज सुविधा शामिल थीं। 1988 में पहली नेशनल हाउसिंग पॉलिसी (NHP) घोषित की गयी। इस नीति का मकसद आवासहीनता को खत्म करना, आवासों की अनुपलब्धता की स्थिति को दूर करना और बुनियादी जरूरतों के न्यूनतम स्तर को सबके लिये उपलब्ध कराना था। इस नीति में सरकार की भूमिका निर्धनतम और पिछड़े वर्गों, अन्य आय वर्गों और निजी उपक्रमों को निर्बाध और बढ़ी मात्रा में भूमि व अन्य सुविधायें उपलब्ध कराने की थी (Ibid). IDSMT सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण योजना के तौर पर शामिल रही।

5.3 भारत में नगरीय नगरीकरण का अर्थ एवं सिद्धांत (Meaning and Principles of Urban Governance in India)

नगर पालिकाएं और नगर निगम भारत में वैधानिक निकाय हैं। हालांकि, अधिसूचित क्षेत्र समिति (Notified Area Committee) और नगरीय क्षेत्र समिति (Urban Area Committee) में पूर्ण या आंशिक रूप से मनोनीत प्रतिनिधि भी होते हैं। भारतीय संविधान के 74वें संशोधन (1992) के

अनुसार नगरों में स्थानीय नगरीकरण के रूप में नगर पालिकाओं अथवा नगर पंचायतों की स्थापना की जानी चाहिये, जो निर्वाचित इकाइयां हों। 1994 में राज्य निकाय विधानों में व्यापक बदलावों से पहले स्थानीय निकाय राज्य सरकार के पूरी तरह अधीन काम करते थे, जो इन्हें विस्तार देने अथवा इसके कार्यक्षेत्रों में बेरोकटोक, विधायी प्रावधानों में बिना किसी बदलाव के ही दखल देने में सक्षम थी।

नगरीय शासन को नगरीय क्षेत्रों के परिषदीय कार्यों को संचालित करने वाले राजनीतिक, वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकरण के तौर पर भी परिभाषित किया जा सकता है। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि यह उन तंत्रों, प्रक्रियाओं, संस्थाओं और संबंधों का सघन स्वरूप है, जिनके जरिये नागरिकों और समूहों को अधिकार, सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और जिससे उनके बीच का अंतर समाप्त होता है। इस प्रकार नगरीय शासन सरकार का ही छोटा स्वरूप है, जिसके जरिये जनसंसाधनों एवं समस्याओं का प्रबंधन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। यह क्षमतावान नगरीकरण है, जो समाज की महत्वपूर्ण जरूरतों को पूर्ण कर सकता है। नगरीकरण का प्रभावी लोकतांत्रिक स्वरूप जनसहभागिता, उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता से ही संभव हो पाता है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन के कुछ महत्वपूर्ण गुण निम्नवत हैं:

1. सहभागिता (Participatory)
2. सततता (Sustainable)
3. वैधानिक एवं जनता के बीच स्वीकृत (Legitimate and acceptable to public)
4. पारदर्शी (Transparent)
5. समानता एवं न्याय को बढ़ावा देना (Promoting equity and equality)
6. संसाधनों के विकास एवं नगरीकरण के तरीकों के विकास में सक्षम (Able to develop the resources and methods of governance)
7. लैंगिक संतुलन को बढ़ावा देना (Promoting gender balance)
8. विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति स्वीकार्यता (Tolerance and acceptance to diverse perspectives)
9. सामाजिक उद्देश्यों के लिये संसाधनों को गतिशील करने में सक्षम (Able to mobilize resources for social purposes)
10. कानूनी नियमों द्वारा संचालित (Operates by rule of law)
11. संसाधनों का क्षमतावान एवं प्रभावी उपयोग (Efficient and effective use of resources)
12. उत्तरदायित्व, भरोसा और सम्मानजनक (Engenders and commands respect and trust accountable)
13. स्थानीय समाधानों को समझना और इनकी जिम्मेदारी लेना (Able to define and take ownership of local solutions)
14. सामर्थ्यवान एवं सुविधाएं देने वाला (Enabling and facilitative)
15. नियंत्रक के बजाय नियामक (Regulatory rather than controler)

वेबस्टर के नये शब्दकोष के अनुसार उत्तरदायित्व वह गुण अथवा स्थिति है, जिसका अर्थ उत्तरदायी होना है। यहां उत्तरदायी उन सभी को हर वो जरूरी सूचना उपलब्ध कराने के लिये हमेशा तैयार रहता

है, जो उन्हें चाहिये होती है। वह अपने कार्यों, असफलता और सफलता के लिये स्वयं जिम्मेदार है। ऐसे में जन उत्तरदायित्व नगरीय शासन के लिये सबसे अहम गुण बन जाता है, क्योंकि स्थानीय नगरीकरण की सेवाओं से ही लोग प्रत्यक्ष, सबसे पहले, त्वरित, दैनिक रूप से एवं व्यक्तिगत रूप से जुड़ते हैं। यह नगरीकरण का वह हिस्सा है, जिसे नागरिक आसानी से समझ सकते हैं और इसे लेकर अपनी राय दे सकते हैं, जिससे वे आसानी से अपनी शिकायतें बता सकते हैं, जो उनकी बातों पर आसानी से प्रतिक्रिया दे सकता है और जिसके विरुद्ध वे तब आसानी से प्रतिकार व्यक्त कर सकते हैं, जब वे असंतुष्ट हों। वस्तुतः यह लोकतंत्र की बुनियाद है, जिसके जरिये जनता के राजनीतिक सिद्धांत सामने आते हैं और जिन्हें वे निरंतर विकसित करते रहते हैं। यह लोगों के द्वारा नगरीकरण की अभिव्यक्ति है।

पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व दो ऐसे पहलू हैं, जिन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि कोई पारदर्शी है तो वह स्वतः ही उत्तरदायी भी हो जाता है। बिना पारदर्शिता के कोई उत्तरदायी नहीं हो सकता है। अच्छे नगरीय शासन में निम्न वजहों से पारदर्शिता होना अत्यावश्यक हैः

1. जनता का विश्वास जीतना
2. जनता की गैरजरूरी आलोचना से बचना
3. जनता के प्रति उत्तरदायी होना

5.4 भारत में नगरीय शासन (Urban Governance in India)

संवैधानिक विकास एवं नगरीय शासन के विकास में बहुत निकटता है। भारत के सन्दर्भ में नगरीय शासन का राजनीतिक आधार अंग्रेजी की उपयोगिता था, जैसाकि जॉन स्टुअर्ट मिल (Mill 1861) के लेखन 'local representative bodies' में परिलक्षित हुआ है। मिल के अनुसार स्थानीय नगरीकरण का एक प्रमुख कारण नागरिकों को शिक्षा प्रदान करना भी था। 1882 में रिपन के प्रस्ताव में भी समान सोच सामने आती है। रिपन के प्रस्ताव में निरंकुश जिला प्रशासन के स्थान पर स्थानीय नगरीकरण के माध्यम से स्वतंत्र राजनीतिक जीवन की छोटी शुरुआत की परिकल्पना की गयी है। नगर निकाय जनगणना के आधार पर निर्धारित नगरीय क्षेत्रों में ही होते हैं। किसी क्षेत्र को जनगणना के आंकड़ों को दृष्टिगत रखते हुए निम्न मापदंडों के अनुसार ही नगरीय क्षेत्र घोषित किया जाता हैः

1. पांच हजार की आबादी
2. गैर कृषि क्षेत्रों में आबादी का घनत्व न्यूनतम चार सौ हो

हालांकि, कुछ राज्य सरकारों ने आयसृजन की क्षमता के स्तर और उपरोक्त जनसंख्या मानकों से अधिक पर ही नगर निकाय की स्थापना की व्यवस्था भी दी थी। ऐसे में 74वें संविधान संशोधन में भी नगर निकायों की तीन श्रेणियां तय की गयी हैंः

1. परिवर्तनशील नगरीय क्षेत्रों में नगर पंचायत स्थापित होंगी
2. छोटे नगरीय क्षेत्रों में नगर पालिकाएं, और
3. बड़े नगरीय क्षेत्रों में नगर निगम स्थापित किये जायेंगे

राज्य सरकारों ने 74वें संशोधन से अप्रभावित निर्णय लेने का अधिकार दिया, लेकिन दो समस्याओं का समाधान नहीं निकल सका। 1. नगर पालिका परिषदों और नगर निगमों के कार्यों में अंतर और 2. छावनी परिषदों के भविष्य में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया। ब्रिटिश व्यवस्था में नगर निकाय नगरीकरण के अधीन बेहद सीमित दायरे में सीमित अधिकारों के साथ काम करते थे (Dillon's Rule) जिससे इनकी अभिरुचियां एवं विविधता भी सीमित होती थी। दूसरी ओर, जर्मन सिद्धांत में स्थानीय निकायों को हर उस कार्य, गतिविधि के संचालन का अधिकार है, जो किसी उच्च वैधानिक संस्था के अधिकार क्षेत्र अथवा संवैधानिक प्रावधानों में शामिल नहीं हों। उदाहरण के लिये, भारत में शुरूआती निकाय विधान में निकायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, जनकल्याण, जनसुविधाएं, सफाई व्यवस्था आदि का जिम्मा देने का प्रावधान था (e.g. Bengal Municipal Act, 1932, Section 108) लेकिन ऐसा करने से संविधान में बतायी गयीं राज्य सूची के कार्यों की पूरी श्रृंखला निकायों में शामिल हो जाती (Datta 1982).

भारत में नगरीय शासन के आंतरिक रूप से तीन अहम कारक हैं:

1. पहला बल 1991 के आर्थिक उदारीकरण के दौर में सामने आयी सुधारवादी प्रक्रियाओं और नीतियों को नियंत्रित करता है
2. दूसरा बल विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वैश्विक संस्थानों की मदद से अच्छे नगरीकरण के संचालन को निर्धारित करता है
3. तीसरा बल उन नगरीय सुधार कार्यक्रमों का है, जिन्हें भारतीय सरकार ने लागू किया है, उदाहरण के लिये जवाहरलाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन (JNNURM) जो वर्ष 2007 में शुरू हुआ, जिसके बाद Smart Cities Mission (SCM), AMRUT, HRIDAY, SBM आदि योजनाएं–नीतियां संचालित की गयीं

इन तीन बलों, कारकों ने एकल अथवा संयुक्त रूप से भारत में नगरीय स्थानीय शासन को परिवर्तित किया है। उदाहरण के लिये, सार्वजनिक उपक्रमों को जनता की नयी जरूरतों के प्रबंधन के हिसाब से पुनर्गठित किया गया, निजी उपक्रमों की सहभागिता बढ़ायी गयी, हितधारकों की व्यवस्था के हिसाब से सेवा नियमों के नये स्वरूप, सरकारी संस्थानों की गतिविधियों को गैरराजनीतिक करते हुए आर्थिक लक्ष्यों की ओर मोड़ना, राजनीतिक दखलंदाजी को कम करते हुए क्षमता में और अधिक बढ़ोतरी करना, कारपोरेट समूहों द्वारा संचालित होने वाली वित्तीय व्यवस्था को बढ़ावा देना और स्थानीय शासन का नये स्वरूप में प्रबंधन करना आदि शामिल हैं। नगरीय भारत की स्थानीय शासनव्यवस्था में इस तरह के परिवर्तनों से भारत वैश्विक व्यवस्था का हिस्सा बना। यूनाइटेड किंगडम, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया स्थानीय नगरीय शासन व्यवस्था में नये स्वरूपों को अपनाने में सबसे आगे हैं। नगरीय शासन अवधारणा का उभार वर्ष 1990 और 1992 के रियो अर्थ समिट व 1996 में इस्तांबूल में आयोजित हैबिटेट–4 कांफ्रेंस से माना जा सकता है। इन आयोजनों में केंद्रीय सरकारों के अलावा स्थानीय नगरीकरण और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया गया। इसका मकसद इन सभी को एक मंच पर लाकर सतत पर्यावरणीय एवं सामाजिक विकास की दिशा में मिलकर काम किया जा सके। यह वह दौर था, जब स्थानीय सरकारें विखंडन एवं और अधिक बदले हुए स्वरूप के अभियानों से जूझ रहे थे और स्थानीय नगरीकरण नगरीय शासन में बदल चुके थे। इन बदलावों की प्रेरणा सरकार के निचले स्तर पर वित्तीय प्रतिबंधों (विशेषकर यूरोपीय देशों में) के कारण मिली। इसके फलस्वरूप स्थानीय नगरीकरण

ने विभिन्न सेवाओं के संचालन के लिये निजी समूहों से करार किये, जिम्मेदारियों को स्वयंसेवी संस्थाओं का सौंपा गया और बेहद सीमित संसाधनों के क्षमतावान उपयोग के जरिये आंतरिक स्पर्धा को जन्म दिया।

5.5 व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis of the System)

एक अच्छा नगरीकरण निश्चित रूप से वह है, जो भ्रष्टाचारमुक्त हो और विकासशील हो। विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे कई राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों ने कर्मचारियों की अक्षमता, पारदर्शिता के अभाव, सार्वजनिक कोष के दुरुपयोग, लालफीताशाही जैसी कमियों को दूर करने के लिये अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा को बल दिया। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अच्छा नगरीकरण जनता के प्रति उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, क्षमता और जवाबदेह होता है। नगरीय क्षेत्रों के विकास के प्रति सार्वजनिक, निजी और सरकारी उत्तरदायित्व तथा चढ़ती हुई विकास दर अच्छे नगरीकरण के प्रतीक हैं।

चीन और भारत (China and India)

लियॉन वैन डैन डूल, फ्रैंक हेंड्रिक्स, अल्बर्टो जियानोली और लींज शैप ने भारत और चीन में नगरीय विकास की तुलना की है। भारत की तरह ही चीन भी बाजारी अर्थव्यवस्था में योजनागत परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पूंजी, श्रम, तकनीक, सूचनाओं की गतिशीलता जैसे पहलू भी शामिल हैं। ऐसा आकलन है कि वर्ष 2025 तक ढाई अरब एशियन शहरवासी हो जायेंगे, जो पूरी दुनिया की नगरीय आबादी का लगभग 54 प्रतिशत होगा। भारत और चीन दोनों का ही मिलाकर कुल एशियाई नगरीय आबादी में 62 प्रतिशत हिस्सा होगा, जबकि वैश्विक आबादी के लिहाज से यह संख्या 40 फीसदी तक होगी (dobbs, 2010).

वर्ष 1950 में भारत चीन के मुकाबले अधिक नगरीय देश था। यहां 17 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी, जबकि चीन में यह आंकड़ा 13 प्रतिशत ही था। लेकिन 1950 से लेकर 2005 तक चीन ने भारत के मुकाबले कहीं अधिक तेजी से शहरीकरण किया है। इससे वहां शहरीकरण की दर 41 प्रतिशत तक जा पहुंची है, जबकि भारत में यह दर 29 प्रतिशत ही है। मैकेंजी (2010), ग्लोबल इंस्टीट्यूट के हालिया शोध के अनुसार चीन की नगरीय आबादी में 2025 तक 40 करोड़ की बढ़ोतरी होने की संभावना है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से करीब 64 फीसदी अधिक होगी, इसी तरह भारत में 21 करोड़ आबादी के नगरीय होने का पूर्वानुमान है जो मौजूदा नगरीय जनसंख्या से 38 प्रतिशत अधिक होगी। इतिहास में इससे पहले कभी दो सबसे बड़े देश (जनसंख्या के लिहाज से) एक ही समय में और एकसमान गति से इस तरह शहरीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजरे हैं। इस प्रक्रिया के चलते दोनों देशों में होने वाले परिवर्तन वैश्विक अर्थव्यवस्था पर असर डालने वाले होंगे और निवेशकों के लिये ये नये अवसरों को प्रदान करेंगे।

भारत में नगरीय प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के वर्ष 2005 से 2025 तक छह फीसदी की दर से बढ़ने का अनुमान है। जबकि चीन की जीडीपी में 7.3 प्रतिशत की वृद्धि संभव है। भारत के शहरों में घर लेने का निर्णय करने वाले और इस पर खर्च करने वाले लोगों की संख्या बढ़ सकती है, इससे 2025

तक भारत में आठ से नौ करोड़ तक गृहस्वामी संभव हैं। चीन में अभी साढ़े पांच करोड़ मध्यमवर्गीय गृहस्वामी हैं, जिनकी संख्या 2025 तक 28 करोड़ तक जाने की संभावना है, जो कुल नगरीय आबादी का तीन चौथाई से अधिक होगा। प्रति व्यक्ति नगरीय आय और मध्यमवर्गीय परिवारों की आय में बढ़ोतरी व्यापारिक दृष्टि से नये बाजार उपलब्ध कराती है। तो भारत और चीन की परिस्थितियों में किसका बाजार व्यापार को सबसे अधिक लाभ दे सकता है? यह सवाल उठना लाजिमी है। भारत में 2025 तक परिवहन, संचार, खाद्यान्न, स्वास्थ्य सेवाएं सबसे बड़े बाजार होंगे, इनके बाद आवास, सुविधाएं, मनोरंजन, शिक्षा जैसे पहलू आयेंगे। यहां तक कि मौजूदा दौर में धीमे नजर आने वाले बाजार भी उस दौर में विश्व के दूसरे हिस्सों के मुकाबले बड़े बाजारों की उपलब्धता का जरिया बनेंगे, क्योंकि तब तक वे शहरीकरण की दौड़ में तेजी से शामिल हो चुके होंगे। इसी तरह चीन में परिवहन, संचार, आवास, सुविधाएं, निजी जरूरतों के सामान, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन का बड़ा बाजार उपलब्ध होगा। इसके अतिरिक्त दोनों ही देशों में नगरीय अवस्थापना भी बहुत बड़ा बाजार होगा। उदाहरण के लिये, 2005 से 2025 तक भारत में प्रतिवर्ष सात करोड़ से नौ करोड़ वर्गमीटर क्षेत्र की आवश्यकता अवस्थापना विकास के लिये होगी। चीन में यह जरूरत दोगुनी यानी 16 करोड़ से 19 करोड़ वर्ग मीटर तक जा सकती है। इसी अवधि में भारत को प्रतिवर्ष 350 से 400 किलोमीटर रेल और भूमिगत मार्गों, सुरंगों का निर्माण करने की जरूरत होगी, दूसरी ओर चीन में यह जरूरत एक हजार किलोमीटर प्रतिवर्ष की होगी।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत और चीन में नये बाजारों के विकास की वजह उनका शहरीकरण है, लेकिन व्यापारिक गतिविधियों के इन बाजारों तक पहुंचने के लिये व्यावहारिक प्रयासों की जरूरत होगी। शहर किस तरह बढ़ रहे हैं और वहां उत्पादकता के परिणाम क्यों, यह कंपनियों के लिये सबसे बड़ा कारक है। इस मामले में चीन भारत के मुकाबले कुछ बेहतर नजर आता है। भारत में जहां अब तक शहरीकरण की दिशा में सीमित ध्यान दिया गया है, चीन ने शहरीकरण की प्रक्रिया को तेजी से अपनाने के साथ शासन, नियोजन, क्षेत्रवार नीतियां, निवेश जैसे शहरों के आंतरिक तत्वों पर भी काम शुरू कर दिया है, जो शहरों को नगरीय स्तर पर और समग्रता में राष्ट्रीय स्तर पर आगे ले जाने में सक्षम हैं।

भारत ने अपने शहरों पर कम निवेश किया है, जबकि चीन ने मांग के अनुरूप निवेश के साथ अपने शहरों को निवेश संबंधी संसाधनों के विकास की स्वायत्ता भी दी है, हालांकि वह स्वयं भूमि संपत्तियों पर निगरानी रखता है और शहरों में वसूले जाने वाले वैल्यू एडेड टैक्स का 25 प्रतिशत हिस्सा राजकोष में जाता है। दूसरी ओर भारत नगरीय अवस्थापना विकास में प्रतिवर्ष 17 डॉलर प्रति व्यक्ति खर्च कर रहा है, जबकि चीन में यह खर्चा 116 डॉलर है। भारत ने अपने शहरों में छोटे स्तर पर शक्तियां, अधिकार और उत्तरदायित्व विकसित किया है, लेकिन चीन में महत्वपूर्ण बड़े शहर प्रांतीय स्तर हासिल कर चुके हैं और वहां मेयर जैसे शक्तिशाली राजनीतिक पद हैं। भारत में नगरीय नियोजन व्यवस्था स्थान की उपलब्धता की मांग को भी पूर्ण कर पाने में विफल रही है, जबकि चीन ने भूउपयोग, आवास और परिवहन जैसी मांगों के लिये लंबे समय के लिये परिपक्व नगरीय नियोजन तैयार किया है, जिसमें पिछड़े इलाकों में भी व्यवस्थित विकास पर जोर दिया गया है।

दोनों देशों के बीच विरोधाभास यह है कि चीन ने जहां शहरीकरण को आकार दे दिया है, वहीं भारत नगरीय वास्तविकता को लेकर अब भी पूरी तरह जगा नहीं है और न ही अपने शहरों की वित्तीय, सामाजिक परिवर्तन क्षमताओं का आकलन कर सका है। हालांकि, यदि भारत बेहतर नगरीय क्रियान्वयन मॉडल को लागू करे तो इसके अंदर नौकरीपेशा आबादी के बूते जनसांख्यिकीय लाभ लेने की पूरी क्षमता है। अगले एक दशक में ऐसी आबादी की संख्या 25 करोड़ से अधिक होने का अनुमान है। यह अंश चीन से कहीं अधिक है, क्योंकि वहां कामकाजी लोगों की आयु तेजी से बढ़ रही है। 2025 तक चीन की नगरीय आबादी का 28 फीसदी हिस्सा 55 वर्ष या इससे अधिक आयु का हो चुका होगा, जबकि भारत में यह आंकड़ा सिर्फ 16 प्रतिशत रहने का अनुमान है। इस लिहाज से भारत अधिक युवा राष्ट्र होगा। इस लिहाज से यदि भारत अपने शहरों की उत्पादकता को बढ़ाने और सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करे तो 2005 से 2025 तक भारत 17 करोड़ कामगार हासिल कर सकता है, दूसरी ओर चीन में इस अवधि में यह संख्या सिर्फ पांच करोड़ रहेगी।

कनाडा और भारत (Canada and India)

कनाडा की कुल जनसंख्या साढ़े तीन करोड़ है जो भारत की जनसंख्या यानी सवा अरब का महज 2.8 प्रतिशत है। कनाडा की मौजूदा जनसंख्या दर 3069 प्रतिवर्ष है, जबकि भारत में यह 3,86,100 प्रतिवर्ष है। इससे आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि कनाडा को भारत के बराबर जनसंख्या हासिल करने में कितने साल लग सकते हैं। भारत को कनाडा की जनसंख्या के बराबर बच्चों को जन्म देने में महज 16 महीने लगते हैं, जबकि कनाडा को भारत में पैदा होने वाले बच्चों की संख्या के बराबर तक पहुंचने में 38 हजार महीने लगेंगे। भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर में 421 नागरिक रहते हैं, जबकि कनाडा में यह आंकड़ा मात्र चार का है। भारत में दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी रहती है, जबकि कनाडा में यह प्रतिशतता 0.5 है। भारत में 65 वर्ष से अधिक आयु के छह करोड़ 20 लाख लोग रहते हैं, कनाडा में यह संख्या पांच लाख है। कनाडा के सबसे बड़े शहर टोरंटो से भारत के 12 शहर बडऋे हैं, जिनमें कानपुर, लखनऊ, जयपुर, पुणे, सूरत, कोलकाता, चेन्नई, अहमदाबाद, हैदराबाद, बंगलुरू, दिल्ली और मुंबई शामिल हैं।

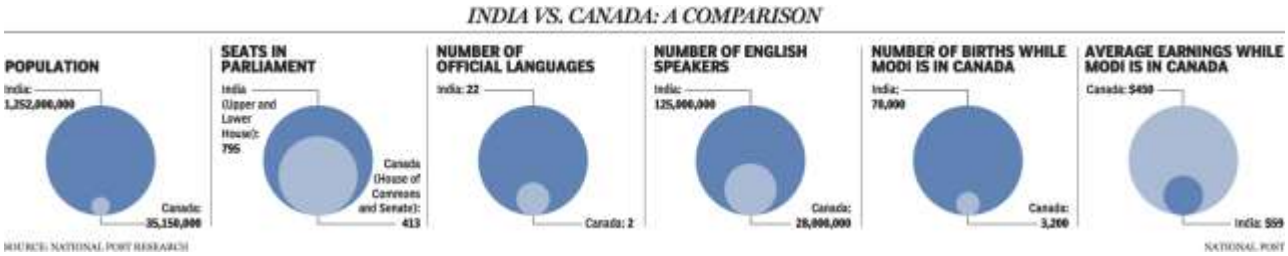

(Source: www.mediablogspot.com)

कनाडा की कुल जनसंख्या जितनी है, उतनी भारत के तेलंगाना राज्य में है जो देश का 12वां सर्वाधिक आबादी वाला राज्य है। वहीं, देश के चार बड़े शहरों मुंबई, दिल्ली, बंगलुरू और हैदराबाद की कुल जनसंख्या के बराबर कनाडा की आबादी है। इसी तरह कनाडा के मुकाबले उत्तर प्रदेश में छह वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या कहीं अधिक है, यह प्रदेश भारत का सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश भी

है। यही नहीं, भारत में जितने लोग मलयालम बोलते हैं, उतनी ही जनसंख्या कनाडा की है, जबकि यह भाषा भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली नवीं भाषा है।

वित्तीय संकट (Fiscal Crisis)

अमेरिका में 2008 में सामने आया नगरीय राजकोषीय घाटा संपत्तियों को गिरवी रखे जाने से शुरू हुआ, क्योंकि वहां नगरीय निकाय नगरीकरण राजस्व के सबसे बड़े स्रोत के रूप में प्रॉपर्टी टैक्स को ही महत्व देते रहे हैं। चीन में भी 2008 में ही निकायों पर भारी उधारी हो गयी थी, लेकिन इसका वजह मंदी नहीं बल्कि बिना सोचे–समझे लिये गये कर्जे और राज्य प्रोत्साहित कार्यक्रमों के तहत अवस्थापना में जरूरत से अधिक निवेश रहा। इन कार्यक्रमों को वहां की केंद्र सरकार ने ही वैश्विक मंदी से चीन की अर्थव्यवस्था को बचाये रखने के मकसद से प्रारंभ किया था। दूसरी ओर, भारत में शहर राज्य द्वारा नगर निकायों की शक्तियों को अवरुद्ध किये जाने से अवधारणात्मक रूप से घाटे में ही रहते हैं। अधिकारिता, उत्तरदायित्व और वित्तीय स्वायत्तता के लिहाज से तीनों देशों के नगरीय शासनों की तुलना करें तो इसे इस तरह भी देखा जा सकता है कि शहरों में विभिन्न शक्तियों के संयोजन की उपलब्धता नगरीय वित्तीय संकट को अलग–अलग वजहों और परिणामें से बढ़ावा दे सकती है।

5.6 प्रमुख मुद्दे और दृष्टिकोण (Issues and Perspectives)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल शहरों की संख्या 5161 है, जहां 38.5 करोड़ आबादी रह रही है, जो भारत की कुल जनसंख्या का 27 प्रतिशत है। भारत में दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों की संख्या 2001 में 34 थी, जिनकी संख्या 2015 तक 40 से अधिक होने का अनुमान है। 2025 तक देश की आबादी में 54 करोड़ की बढ़ोतरी और कुल आबादी का आधा यानी करीब एक अरब लोगों के शहरों में बसने की संभावना है। हालांकि, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्थिति विस्फोटक हो सकती है। भारतीय शहरीकरण के इस चिंताजनक पहलू को ध्यान में रखते हुए यहां विकास की सतत प्रक्रिया को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यहां परिवहन, सीवरेज, जल वितरण, सफाई, जलनिकासी, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी अवस्थापना जरूरतों के विकास के लिये बहुत भारी निवेश की आवश्यकता है। प्रारंभिक रूप से कई जगह स्थानीय तौर पर शहरीकरण की प्रक्रिाय के दौरान अंतरक्षेत्रीय, आकार, वर्ग वितरण जैसे असंतुलन सामने आये हैं। महाराष्ट्र के पश्चिमी हिस्से, गोआ और गुजरात की ओर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि ये राज्य शहरीकरण की प्रक्रिया को लगभग 40 प्रतिशत तक पूर्ण कर चुके हैं, लेकिन दूसरी ओर ओडिशा और बिहार 13 प्रतिशत के आंकड़े से भी कहीं पीछे हैं। ऐसी स्थिति अंतरक्षेत्रीय पलायन को बढ़ावा देती है (singh and Steinberg, 1996). जरूरत से अधिक श्रमिक वर्ग निर्धन क्षेत्रों से पलायित होकर विकसित हो रहे नगरीय केन्द्रों में रोजगार की तलाश में पहुंचते हैं और उनके कारण शहरों में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी, जब तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के समुचित अवसर उपलब्ध नहीं कराये जाते। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारत में नगरीय जनसंख्या का 39.9 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों के पलायन से मिला है और ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों के मुकाबले रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिलने के कारण इसके और अधिक बढ़ने की संभावना है। लेकिन यह भी जानना जरूरी है कि

नगरीय विकास में योगदान के बजाय इस हिस्से ने नगरीय क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसरों को कम करने के साथ निर्धनता को बढ़ावा दिया है। ऐसे में भारत के सन्दर्भ में नगरीय विकास की सततता सीधे तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से संबद्ध है, विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों में।

5.7: निष्कर्ष (Conclusion)

राहुल मुखर्जी ने भारत की नगरीकरण व्यवस्था का गहन अध्ययन किया है। अनके अनुसार भारत के कुछ राज्यों में नगरीय शासन की विफलता का एकमात्र कारण राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव रहा है। इसी तरह प्रो. राधाकांत बारिक, जिन्होंने जेपी आंदोलन का ओडिशा में विश्लेषण किया, बताते हैं कि स्थानीय नगरीकरण की विफलता की वजह सत्तासीन दल की बेरूखी और उपेक्षापूर्ण व्यवहार होता है। Annual Survey Of India's City System (ASICS) के अनुसार नियमों, कानूनों, संस्थानों और सांस्थानिक प्रक्रियाओं के मूल्यांकन के लिहाज से बंगलुरू सबसे निम्नतम शहर है। पुणे इस मूल्यांकन में 5.1 रेटिंग के साथ पहले स्थान पर है, जिसके बाद कोलकाता, तिरूअनंतपुरम, भुवनेश्वर आते हैं जिनका तीनों का स्कोर 4.6 है। राजधानी दिल्ली की रेटिंग 4.4 है, जबकि हैदराबाद 4.3, मुंबई 4.2 और चेन्नई को 3.4 रेटिंग मिली। बंगलुरू की रेटिंग 3 रही।

5.8 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय शासन से आप क्या समझते हैं? भारत में इनका विकास किस तरह हुआ?
2. भारत में नगरीय शासन के चरणबद्ध विकास की व्याख्या करें।
3. अच्छे नगरीय शासन में क्या गुण होने चाहिये? आंकड़ों के आधार पर इनका वर्णन करें।
4. भारत में नगरीय शासन की मौजूदा स्थिति और इनके विकास की व्याख्या करें।

5.9 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Barik, Radhakant (1977), "Politics of the JP Movement", Radiant Publication, Delhi.

Dobbs,Richard(2010), "The Quest For Good Urban Governance: Theoretical Reflections And..., Mckinsey Global Institute", A Version Of This Article Appeared In The *Financial Times* On May 18, 2010.Https://Www.Mckinsey.Com/Global-Themes/Urbanization/Comparing-Urbanization-In-China-And-India

Kundu, Amitabh (2011), "Trends And Process Of Urbanization In India", Urbanization And Emerging Population Issues, Vol.6, New York.

Mukherji, Rahul (2017), "Bureaucratic Rationality, Political Will And State Capacity", Economic and Political Weekly, Vol.52, Issue No.49

Singh, Kulwant & Steinberg, Florian(Ed) (1996), "Urban India in Crisis", New India International Publication, Delhi

Nagaraja Rao, C. (2015), "Urban Governance in India", Kalpaz Publication, Delhi

Leonardo, John G, (2008), "Urban Government under the Raj A Case Study Of Municipal Administration In Nineteenth–Century South India", Https://Doi.Org/10.1017/S0026749X00004571

Http://Mohua.Gov.In/Upload/Uploadfiles/Files/74th_CAA13.Pdf

Walter A. Fairservis (1971), "The Roots of Ancient India: The Archaeology of Early Indian Civilization", New York, Macmillan.

Xuefei Ren(2015),"City Power And Urban Fiscal Crises: The USA, China, And India",Pages 73-81 | Received 30 May 2014, Accepted 20 Nov 2014, Published Online: 11 Mar 2015

इकाई– 6

नगरीय नीतियों की प्रकृति, नगरीय विकास कार्यक्रम

(Nature of Urban Policies, Urban Development Programme)

इकाई की रुपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 नगरीय नीति क्या है, प्रकृति और अवसर

6.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम

6.4 नगरीय नीतियां: अंतर देशीय दृष्टिकोण

6.5 भारत में वर्तमान नगरीय विकास योजनाएं

6.6 निष्कर्ष

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 भावी अध्ययन

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जान सकेंगे:

1. नगरीय नीतियां क्या होती हैं और इनकी प्रकृति व अवसर क्या हैं
2. भारत में नगरीय नीतियों का विकास और इनके हितधारक
3. भारत में संचालित नगरीय विकास कार्यक्रम, इनका उद्देश्य और इनसे जुड़े मुद्दे

6.1 परिचय (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात शहरीकरण की प्रक्रिया को गति मिली। 20वीं सदी के अंत में यह बात सामने आयी कि तत्कालीन शहरीकरण की प्रक्रिया की वजह से क्षेत्रीय असमानता और असंतुलन उभरा। इसके बाद की योजनाओं में अन्य उद्देश्यों के अलावा यह लक्ष्य भी महत्वपूर्ण था कि क्षेत्रीय संतुलन (Balance) एवं समन्वय (Co-ordination) बना रहे। हालांकि, नगरीय विकास का घटक आर्थिक विकास से सीधे तौर पर जुड़ा हुआ है। इसकी वजह यह है कि भारत की कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में नगरीय क्षेत्रों की भागीदारी 1950–51 में 29 प्रतिशत थी, जो 1980–81 में 47 प्रतिशत और 2007 में 63 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 2021 तक इसके 75 प्रतिशत होने की संभावना है (Planning Commission 2008). यह भी माना जाता है कि जीडीपी में नौ से दस प्रतिशत की विकास दर भारतीय शहरों को बुनियादी तौर पर अधिक जीवनोपयोगी एवं समावेशी बनाने पर निर्भर है (Planning Commission, Govt. of India 2008). अधिकतर विकासशील देश तेज शहरीकरण के दौर से गुजर रहे हैं, जिसके चलते वहां नगरीय व्यवस्थाओं में निरंतर बदलाव आ रहे हैं। यद्यपि विभिन्न नीतियों को लागू करने का मकसद अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करना होता है, लेकिन इनका संचालन करने वाली राजनीतिक–आर्थिक शक्तियां ही इसमें बड़े अवरोध के तौर पर सामने आती हैं। इसके चलते भारत में अधिकतर नगरों में शहरीकरण की प्रक्रिया नियोजित (Planned) होने के बजाय अनियमित और अनियंत्रित होकर अव्यवस्था में बदल गयी। (Gaganeswar, 1995).

वर्ष 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण यानी LPG (liberalisation, privatisation and globalisation) की वजह से नीतियों में नगरीय अवस्थापना के वित्तीय निवेश को लेकर बदलाव किये गये। (Mehta and Mehta, 2010). वर्ष 2015 में पहली बार वित्तीय सेक्टर ने शहरों में नगरीय निकायों के जरिये अवस्थापना विकास (Infrastructure Development) के लिये नगरीय सेक्टर से समन्वय प्रारंभ किया। यह नगरीय निकायों के लिये एक नयी दिशा में कदम बढ़ाने जैसा था। इसकी पृष्ठभूमि में हम जानेंगे कि नगरीय निकाय नगरीय विकास प्रक्रिया को लेकर किस तरह नीतियों का निर्धारण करते हैं और इसके लिये क्या–क्या कदम उठाये जाते हैं।

6.2 नगरीय नीति, प्रकृति एवं अवसर (Urban Policy, It's Nature and Scope)

नगरीय नीति अवधारणात्मक (Conceptual) एवं व्यवस्थित (Systematic) गतिविधि है, जिसका संचालन नगर निकाय जैसे सार्वजनिक प्राधिकरण (Public Authority) द्वारा किया जाता है (Ministry for Regional Development of the Crezch Republic, 2010). इसके उद्देश्यों का निर्धारण प्रमुख नगरीय विकास मुद्दों, जरूरतों की पहचान और राष्ट्रीय व्यवस्था तथा क्षेत्रीय ढांचे में उनके महत्व, कार्य आदि के आधार पर किया जाता है। इनका निर्धारण छह सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। इस परिभाषा का तात्पर्य अंतरअनुशासनबद्ध व संयोजन की प्रकृति से है, यानी किसी समग्र नीति का निर्माण, निर्धारण एवं लागू करने की प्रक्रिया कई एकनिष्ठ उपनीतियों के संयुक्त समन्वय के जरिये होता है। क्षेत्रीय नीतियां, भूउपयोग योजनाएं इस संयोजन के लिये क्षेत्रीय तंत्र (Framework) तैयार करती हैं। Ministry for Regional Development of Crezch Republic,2010).

नगरीय नीतियों के सिद्धांत दरअसल उन दस्तावेजों का ढांचा हैं, जिनका उद्देश्य नगरीय विकास के लिये सरकार के स्तर पर उठाये जाने वाले विभिन्न कदमों का संयोजन एवं समन्वय (Co-ordination) है। इनकी मदद से ऐसी नियमावली और गतिविधियों को को चिह्नित किया जाता है, जो निरंतर नगरीय विकास के लिये सर्वथा उपयोगी हों। जिनकी मदद से नगरों के विकास की जरूरतों को समझा जा सके और पूरी प्रक्रिया में मदद के लिये निजी और स्वयंसेवी सेक्टर को प्रेरित किया जा सके। भारत अब सिर्फ गांवों का देश नहीं रह गया है। वर्तमान में 31 करोड़ के करीब भारतीय 3700 के करीब शहरों और कस्बों में रहते हैं, जबकि स्वतंत्रता के वक्त यह संख्या महज 60 लाख थी। पिछले 50 साल में भारत की आबादी में ढाई गुना की बढ़ोतरी हुई है, लेकिन भारतीय शहरों का विकास पांच गुना तक हुआ है। आंकड़ों की बात करें तो वर्ष 2011 में नगरीय आबादी 31.6 प्रतिशत रही। कस्बे या छोटे नगर भारत की जीडीपी में बड़ा योगदान करते हैं और उन सेवाओं के प्रदाता हैं जो उन नगरों–कस्बों में अथवा आसपास रहने वाले लोगों के लिये भी आवश्यक हैं। लेकिन, ये नगर सामाजिक, परिवहन, पर्यावरण, प्रदूषण संबंधी कई गंभीर समस्याओं से भी इसी वजह से जूझ रहे हैं।

शॉ (Shaw, 1999) ने नीति निर्माण में इसे बड़ी बाधा करार दिया है कि नगरीय नीति और योजना राज्य सूची के विषय हैं। इसकी वजह से जिस पंचवर्षीय योजना का निर्माण केन्द्र सरकार ने संवैधानिक

विधायिका शक्ति से इतर विकास योजनाओं को गति देने के लिये किया था, वह नगरीय नीतियों के लिये सिर्फ निर्देशक तत्व (Directive Element) बनकर रह गयी। नगरीय नीतियों एवं योजनाओं के लिये नियम–सिद्धांतों का निर्माण आर्थिक विकास के लिये पूंजी संचय के मकसद से किया गया था। उदाहरण के लिये, 1960 में पूंजी के संकट ने शहरों पर केन्द्रित नीतियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया, जो पहले से भारत के वार्षिक आर्थिक प्रदर्शन में बड़ा योगदान कर रहे थे। भारत की पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं (1951-1961) पर विभाजन का साफ असर दिखता है। सान्याल (2014) के शब्दों में, इस दौर में लोगों के पलायन की तत्कालीन इतिहास की सबसे बड़ी घटना हुई। बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत की ओर आये। उनकी जरूरतों को पूरा करने, आवासीय और अन्य सुविधाएं प्रदान करने में उपजी परिस्थितियों से दिल्ली, कलकत्ता (अब कोलकाता) जैसे बड़े शहरों के साथ राज्य एवं केन्द्र सरकारों तक को व्यग्र किये रखा। दिल्ली में किंग्सवे कैंप एवं कलकत्ता में कूपर्स कैंप जैसी जगहों की स्थापना भारत में नये आये इन लोगों के आवास के लिये की गयी, लेकिन उनकी तादाद बहुत अधिक होने के कारण इन शिविरों में व्यवस्थाएं, सुविधाएं कम पड़ने लगीं। बड़ी संख्या में लोगों को बैठे ही रहना पड़ता था, क्योंकि शिविरों में इससे अधिक व्यवस्था कर पाना मुश्किल हो गया था। सान्याल (2014) बताते हैं कि दिल्ली में मालवीय नगर, कालकाजी, लाजपतनगर आदि जिन क्षेत्रों को आज मध्यमवर्गीय लोगों का क्षेत्र और महंगा बाजार माना जाता है, उन्हें कभी पुनर्वास मंत्रालय ने शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये इस्तेमाल किया था।

नगरीय नीति के बुनियादी तत्व (Fundamentals of Urban policy)

1. केन्द्रीय शहरों में हाशिये पर रहने वाले समूहों की निर्धनता और सामाजिक उपेक्षा आज के दौर के शहरों की सबसे बड़ी समस्या है। इसका निस्तारण अविलंब और संसाधन उपलब्ध कराने के दृढ़निश्चय के साथ किया जाना चाहिये, न कि इसे सिर्फ मामूली दिक्कत मानना चाहिये। ऐसे विशेष कार्यक्रम और नीतियों का निर्माण आवश्यक है जो ऐसे समूहों को विकास योजनाओं से जोड़ सकें।
2. नगरीय क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक शक्तियों ने न तो संतुलन बनाये रखा है न ही साम्य। उद्योगों, परिवहन सुविधाओं, आवासीय व्यवस्थाओं, सामाजिक सेवाओं और नगरीय जीवन से जुड़े कई अन्य आयामों में अव्यवस्थाओं का माहौल लगातार बढ़ता जाता है और कई बार इस बढ़ावे की वजह नगरीय नीतियां ही होती हैं। ऐसे में नगरीय संतुलन की अवधारणा को समझना आवश्यक लगता है, 'सामाजिक परिस्थितियों में जब कुछ शक्तियां असंतुलन की स्थिति बनाती हैं तो ऐसी ताकतें भी उभरती हैं जो इसका प्रतिरोध करती हैं और धीरे–धीरे परिवर्तन करते हुए फिर संतुलन की स्थिति को साधती हैं।संघीय (Federal) अधिकारियों के लिये यह निरंतर लक्ष्य का विषय होना चाहिये, क्योंकि उनकी योजनाएं नगरीय क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं और उनमें कुछ ऐसे भी होते हैं जो संतुलन नहीं चाहते हैं।' (planning tank, 2017).
3. नगरीय शासन के भंगुर (Fragile) और अनुपयोगी (Obsolescent) ढांचे ने नगरीय समस्याओं को जन्म दिया। नगरीय समस्याओं के निस्तारण को लेकर प्रभावी प्रयास नहीं करने की गैरजिम्मेदारी तो नगरीय सरकार में ही अकसर अंतर्निहित देखी गयी है। संघीय विचारों के साथ सरकारों को नगरीय परिस्थितियों के प्रति स्थानीय शासन के दायित्वों को

जागरूक कर सुधारीकरण (Reformation) को प्रोत्साहित करने के प्रयास करने चाहिये। संघीय सरकार का एकमेव लक्ष्य स्थानीय शासन को शक्तिसंपन्न, अधिक प्रभावी, अधिक पारदर्शी, अधिक गतिशील और स्थानीय नागरिकों के प्रति अधिक दायित्वपूर्ण बनाना चाहिये। दूसरी ओर, एक अच्छी संघीय सरकार को विशेष समस्याओं के निस्तारण के लिये तैयार की गयी समानांतर सत्ता व्यवस्थाओं को खत्म करने के साथ प्रभावी विकेन्द्रीकरण को बढ़ाना चाहिये।

4. संघीय नगरीय नीति का पहला और सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य नगरीय शासन की राजकोषीय गतिशीलता (Fiscal Vitality) को बढ़ाना और इसकी मदद से संसाधनों का विकास करना होना चाहिये। ताकि स्थानीय शासन के पास संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता हो और वह स्थानीय जनकल्याण को लेकर इनकी मदद से निर्णय ले सके।
5. नगरीय नीतियों में सार्वजनिक सेवाओं के समान वितरण के प्रावधानों को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक बदलाव किये जाने चाहिये, जो विभिन्न नगरीय क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र में लागू हो सकें। संघीय नगरीय नीतियों में यह बिंदु प्रायिकता पर रहना चाहिये।
6. संघीय शासन को तकनीकी विकास, निर्धनता और अन्य कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर आने की गति व प्रक्रिया पर सर्वाधिक नजर रखनी चाहिये। इसके अलावा सघन आबादी वाले क्षेत्रों से उपनगरीय क्षेत्रों में भी लोगों के पलायन पर सरकार की नजर रहे।
7. नगरीय मामलों में राज्य सरकार को मुख्य भूमिका का निर्वहन करना चाहिये और इस काम में राज्य सरकार को संघीय सरकार की पूरी मदद व प्रोत्साहन मिलना चाहिये।
8. संघीय सरकार को प्रभावी प्रोत्साहन योजनाओं को लागू करना चाहिये, ताकि राज्य सरकार, स्थानीय निकाय और निजी सेक्टर संघीय नीतियों, कार्यक्रमों के सफल निष्पादन में मदद करें और निर्धारित लक्ष्य को हासिल किया जा सके।
9. संघीय शासन को नगरीय मसलों से जुड़ी सूचनाएं जुटाने के लिये निरंतर और वृहद् शोधकार्यों को बढ़ावा देना चाहिये।
10. संघीय शासन को स्वयं के उदाहरणों, प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ावा देने और विकास के प्रयास करने चाहिये और सफल नगरीय विकास में सौंदर्यबोध के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिये।

6.3 भारत में नगरीय विकास कार्यक्रम (Urban Development Programmes in India)

'भारत में शहरीकरण का पिछले 35–40 वर्ष का रिकॉर्ड साफ करता है कि यहां निरंतर बढ़ती नगरीय आबादी के लिये सक्षम नगरीय प्रशासन, आवासीय और अन्य जरूरी सुविधाओं के लिये आवश्यक वित्तीय संसाधनों का असमान वितरण किया गया, जबकि प्रबंधन को लेकर भी अनदेखी की गयी।' (Nath,1986). अनियोजित एवं बेतरतीब तरीकों के कारण भारत के पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया अप्रभावी रही। गलत शहरीकरण नीतियों के परिणामस्वरूप शहरों में बेरोजगारी बढ़ती गयी, जबकि शहरों में आबादी भी लगातार बढ़ रही थी। (Bandyopadhyay, 2017). विकास का अर्थ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक आयामों में जीवन की बेहतर परिस्थितियों से होता है। यह भविष्य के जीवन के लिये निरंतर क्षमता को बढ़ावा देने का भी परिचायक है। विकास एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समग्र सामाजिक वातावरण को बदलती है। इसके आर्थिक, सामाजिक,

राजनीतिक, प्रशासनिक पहलू संतुलित एवं उर्ध्वगामी (Upwards) परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। यह अनिवार्य रूप से माना जाता है कि यह प्रक्रिया समाज के हर स्तर को अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के अवसर प्रदान करे।

भारत में नगरीकरण का जन्म ईसा से 2500 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी में हुआ। इसके बाद से विभिन्न परिस्थितियों में भारत की नगरीय आबादी में निरंतर वृद्धि ने इसके अवस्थापना व्यवस्था पर दबाव बहुत अधिक बढ़ा दिया है। ऐसे में देश के निरंतर विकास के लिये बेहतर प्रबंधन और योजनाओं की आवश्यकता बढ़ गयी। स्वतंत्रता के बाद देश के विकास के लिये महत्वपूर्ण घटकों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1951 में पंचवर्षीय योजना लागू की। शुरुआती पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था काफी पिछड़ी हुई थी, जिसमें आर्थिक लाभ के लिये आवश्यक व्यापार, उद्योगों के मुकाबले जनसंख्या में लगातार और काफी अधिक बढ़ोतरी हो रही थी। इसके चलते प्रति व्यक्ति आय भी काफी कम थी। यही वजह रही कि भारत में योजना को केन्द्रीय लक्ष्य मानकर विकास की ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत की गयी, जिसका उद्देश्य लोगों के जीवनस्तर में सुधार के साथ उन्हें समृद्धि के बेहतर अवसर प्रदान करना था। (Commission) चूंकि 1947 से ही भारतीय अर्थव्यवस्था योजनाओं पर आधारित थी, योजना आयोग को भारत के पांच साल के विकास, क्रियात्मकता के लिये योजनायें बनाने का दायित्व दिया गया। 2014 में योजना आयोग को भंग कर इसकी जगह नीति आयोग को यह जिम्मेदारी दी गयी। यहां नीति आयोग का अर्थ National Institution for Transforming India (NITI) है।

स्वतंत्रता से पूर्व भी देश के विकास को लेकर योजनाएं बनाने के प्रयास होते रहे थे। उदाहरण के लिये 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय योजना समिति बनायी गयी, 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनर्गठित इंडियन ट्रेड यूनियन का पीपुल्स प्लान (Peoples' Plan) और 1950 में जयप्रकाश नारायण की सर्वोदय योजना। इन सभी में आर्थिक रूप से भारत के विकास को लेकर जरूरी कदम सुझाये गये।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी प्रभाव पर आधारित भारत की पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी। इसकी प्रक्रिया 1950 में योजना आयोग के गठन के साथ शुरू हुई, जिसका लक्ष्य संसाधनों की उपलब्धता, उत्पादन में वृद्धि, अवसरों–रोजगारों की उपलब्धता आदि के जरिये लोगों के जीवनस्तर में सुधार तय किया गया। योजना आयोग को देशभर के संसाधनों के मूल्यांकन, कम उपलब्धता वाले संसाधनों में वृद्धि, संसाधनों के प्रभावी और संतुलित उपभोग और लक्ष्य को लेकर प्रायिकताओं के हिसाब से योजनायें तैयार करने का जिम्मा दिया गया।

पहली पंचवर्षीय योजना 1951 में आयी, जिसके बाद दो और पंचवर्षीय योजनायें योजना आयोग ने तैयार कीं, जो 1965 तक चलीं, क्योंकि इसी दौर में भारत–पाक विवाद उभर आया। इसके बाद 1966 से 1969 तक दो वर्ष अकाल पड़ने, रुपये के अवमूल्यन, महंगाई दर में बढ़ोतरी और संसाधनों की कमी की वजह से योजना आयोग की गतिविधियों पर असर पड़ा। ऐसे में तीसरी पंचवर्षीय योजना के 1965 में समाप्त होने के बाद चौथी योजना 1969 में लागू की जा सकी। वर्ष 1990 में लगातार बदलती

राजनीतिक परिस्थितियों के चलते आठवीं योजना लागू नहीं हो सकी। ऐसे में 1990–91 एवं 1991–92 को वार्षिक योजना के तौर पर लागू किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992 में लागू की जा सकी।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951–1956)

हेरड–डोमर मॉडल पर आधारित इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत ने 2.1 प्रतिशत की विकास दर का लक्ष्य रखा था। इस पंचवर्षीय योजना में मुख्य फोकस बिजली, कृषि, परिवहन सुविधाओं के विकास के साथ महंगाई दर पर लगाम कसे रखना था। शरणार्थियों की बढ़ती संख्या एवं दामों में बढ़ोतरी के चलते यह आवश्यक हो गया था। इस पंचवर्षीय योजना को भाखड़ा बांध, मेट्टूर बांध, हीराकुंड बांध जैसी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिहाज से वरदान भी माना जाता है। शरणार्थियों की व्यवस्था एवं खाद्यान्न की कमी को दूर करने, महंगाई पर रोक के साथ इस योजना ने 3.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

4.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने के लक्ष्य के साथ इस योजना का मॉडल प्रो. पीसी महलानोबिस ने तैयार किया था। यही वजह है कि इसे महलानोबिस प्लान के तौर पर भी जाना जाता है। पहली पंचवर्षीय योजना के बाद खाद्यान्न संकट की समस्या काफी हद तक दूर हो चुकी थी। देश आर्थिक तौर पर विकास की ओर बढ़ रहा था, लिहाजा इस योजना में विदेशी मदद और आयात पर फोकस किया गया। इसी योजना के दौरान रूस, ब्रिटेन एवं जर्मनी की मदद से क्रमशः भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला स्टील प्लांट समेत पांच स्टील प्लांट लगाये गये।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966)

इस योजना के लिये विकास दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया। इस योजना में पिछली दो योजनाओं के अनुभवों का इस्तेमाल किया गया। विदेश निर्यात, उद्योगों के विकास पर इस योजना में फोकस किया गया, ताकि आर्थिक स्थिति को और मजबूत किया जा सके। इस पंचवर्षीय योजना का मकसद भारत में आर्थिक विकास के संसाधनों का विकास करना थ। लेकिन, इसी बीच 1962 में भारत–चीन युद्ध और 1965 में भारत–पाक युद्ध के चलते इस योजना का लक्ष्य रक्षा विकास की ओर मोड़ना पड़ा। इसके अलावा 1965–66 में अकाल ने भी मुश्किलें बढाईं। इस सबके चलते यह योजना 2.8 प्रतिशत की ही विकास दर हासिल कर सकी, जो लक्ष्य से काफी कम थी। इसके चलते इस पंचवर्षीय योजना को असफल माना गया।

योजनावकाश (1966–1969)

इस अवधि में भारत में विभिन्न कारणों से तीन वार्षिक योजनाओं को लागू किया गया। यही वजह है कि इस अवधि को पंचवर्षीय योजनाओं के अवकाश का काल भी माना जाता है। इस अवधि में देश ने 4.3 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। दरअसल, तीसरी पंचवर्षीय योजना की असफलता के बाद तीन अल्पकालिक योजनाओं की जरूरत महसूस हुई। इनका लक्ष्य खाद्यान्न संकट को देखते हुए कृषि को बढ़ावा देना और खेती के नये तरीकों, बीज–खाद की पर्याप्त उपलब्धता, सिंचाई व्यवस्था और मिट्टी संरक्षण की प्रक्रिया को बढ़ाना था। इन अल्पकालिक योजनाओं ने वास्तव में भारत के आर्थिक विकास में खासी मदद की और तीसरी योजना के काल में हुए नुकसान की भरपाई भी की।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–1974)

5.7 प्रतिशत के लक्ष्य विकास दर के साथ इस योजना का मकसद आर्थिक तौर पर भारत की आत्मनिर्भरता और स्थायित्व को बढ़ाना था। भारत–पाक युद्ध के दौरान कई देशों ने भारत को कच्चा माल देने से इनकार कर दिया था। ऐसे में इस योजना में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के साथ अन्य सेक्टर में भी स्थायित्व पर फोकस किया गया। प्रारंभिक दो वर्षों में रिकॉर्ड उत्पादन हुआ, लेकिन बाद के तीन वर्षों में मौसम और अन्य कारणों से उत्पादन पर खासा असर पड़ा। इसके अलावा भारत–पाक युद्ध के बाद बांग्लादेशी शरणार्थियों की बढ़ती संख्या ने भी मांग और उपलब्धता को प्रभावित किया। इस योजना से भारत को 3.9 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई। जनसंख्या नियंत्रण को लेकर परिवार नियोजन कार्यक्रम की शुरुआत को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में इस योजना को नाकाम माना गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–1979)

4.4 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस योजना का प्रारूप डीपी धर ने तैयार किया था। इस योजना को तेल की बढ़ती कीमतों के कारण पैदा हुए आर्थिक संकट और गेहूं के थोक व्यापार को अपने हाथों में लेने की सरकार की नाकामी को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य निर्धनता को दूर कर आत्मनिर्भरता को बढ़ाना था। 1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद इसका लक्ष्य बदलकर प्रधानमंत्री के 20 सूत्रीय कार्यक्रम कर दिया गया। 1978 में यह योजना समाप्त कर दी गयी। इस योजना ने 4.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की, लेकिन उच्च महंगाई दर को समाप्त कर पाने में यह योजना सफल नहीं हो सकी।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985)

इस अवधि में भारत ने 5.2 प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस योजना का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी, तकनीकी विकास, गरीबी उन्मूलन, रोजगार योजनाएं, जनसंख्या नियंत्रण था। इसी दौर में TRYSEM -Training of Rural Youth for Self Employment, IRDP -Integrated Rural Development Programme, NREP -National Rural Employment Programme जैसी योजनाएं लागू हुईं। इस पंचवर्षीय योजना को सफल माना जाता है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990)

5 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य इस पंचवर्षीय योजना के लिये तय किया गया था। इस योजना का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्न एवं रोजगार सेक्टर रहे। उत्पादन में बढ़ोतरी और विभिन्न अवसरों की उपलब्धता का लक्ष्य हासिल करने के साथ इस पंचवर्षीय योजना के जरिये भारत को 6 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई, जो इसके लक्ष्य से अधिक थी।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997)

5.6 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के साथ इस पंचवर्षीय योजना को लागू किया गया। इससे पहले दो वर्षों तक केन्द्र में राजनीतिक उथल–पुथल बनी रही थी। प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहा राव की अध्यक्षता में इस योजना में कमजोर आर्थिक स्थिति को शक्तिसंपन्न बनाने पर फोकस किया गया। इसी दौर में आर्थिक और वित्तीय सुधारों की कवायद शुरू हुई, जिसे उदारीकरण भी कहा जाता है। इस अवधि में कृषि, उत्पादन, निर्यात–आयात, वाणिज्य–व्यापार सेक्टर में बेहतर विकास देखा गया, जबकि घाटा भी कम करने में कामयाबी मिली। इस योजना से भारत ने 6.8 प्रतिशत की विकास दर हासिल की जो भारतीय योजना के इतिहास में सर्वाधिक विकास दर थी।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)

सामाजिक न्याय एवं समानता के साथ इस पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत की विकास दर हासिल करने का लक्ष्य था। इस योजना में निजी सेक्टरों के साथ विदेशी निवेश यानी एफडीआई पर भी फोकस किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य समेत विभिन्न अवस्थापना में निजी सेक्टरों को निवेश के लिये प्रोत्साहित किया गया। रोजगार, ग्राम्य विकास, कृषि विकास और गरीबी उन्मूलन भी इस योजना के अहम हिस्से रहे।योजना से भारत को 5.4 प्रतिशत की विकास दर हासिल हुई।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007)

आर्थिक विकास के साथ साक्षरता दर में वृद्धि, महिलाओं की बेहतर स्थिति, श्रम मूल्य, मातृ–शिशु मृत्यु दर में कमी, साफ पेयजल की उपलब्धता, नदियों से प्रदूषण खत्म करना आदि इस योजना के मुख्य लक्ष्य थे। आठ फीसदी की विकास दर इस योजना से हासिल करने का लक्ष्य था। विकास को लेकर शासन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस योजना में पंचायती राज को महत्व दिया गया, जबकि राज्यवार भी विकास लक्ष्य तय किये गये। इससे संतुलित विकास प्रक्रिया में मदद मिली। योजना के

समाप्त होने पर भारत ने 7.6 प्रतिशत की विकास दर हासिल की और योजनाओं व विकास में राज्यों की भूमिका को तय करने के साथ कृषि को अर्थव्यवस्था का अहम अंग माना गया।

11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)

समावेशी विकास आधारित इस योजना का लक्ष्य नौ प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करना था। शिक्षा–स्वास्थ्य की बुनियादी सेवाओं की व्यवस्था, रोजगार के अवसर, गरीबी उन्मूलन, वायु प्रदूषण पर रोकथाम, वनों का संरक्षण, लैंगिक असमानता को दूर करना आदि इस समावेशी विकास की प्रक्रिया के हिस्से थे। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार सुविधाओं का विकास भी इस योजना का अहम लक्ष्य थेः

1. सभी गांवों में वर्ष 2012 तक टेलीफोन कनेक्शन और ब्रॉडबैंड सुविधा उपलब्ध कराना
2. एक हजार और इससे अधिक आबादी वाले गांवों तक वर्ष 2009 तक सड़क निर्माण
3. सभी गांवों में वर्ष 2009 तक बिजली कनेक्शन

इस पंचवर्षीय योजना ने आठ प्रतिशत की विकास दर हासिल की। इस पंचवर्षीय योजना के निर्धारित लक्ष्य से कम प्रदर्शन करने के लिये फंड की कमी को बड़ी बाधा माना जाता है।

12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017)

यह पंचवर्षीय योजना दूसरे वैश्विक मंदी के दौर में प्रारंभ हुई। यूरोजोन में उभरे आर्थिक संकट ने दुनिया के अन्य देशों की तरह भारत पर भी खासा असर डाला। ऐसे में इस पंचवर्षीय योजना का मूल मकसद आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखना और समावेशी व निरंतर विकास की प्रक्रिया को बनाये रखना था। इसके लिये गरीबी उन्मूलन, क्षेत्रीय संतुलन, असमानता को दूर करना, सशक्तीकरण को बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं, कौशल विकास, तकनीकी विकास, अवस्थापना विकास के जरिये पूर्ण करना था। सूचना तकनीकी के विकास, संचार, सड़क विकास आदि पर भी फोकस किया गया। उर्जा क्षेत्र में NELP-New Exploration Licensing Policy लागू की गयी।

नीति आयोग (National Institution for Transforming India)

एक जनवरी 2015 को नीति आयोग का गठन किया गया। हालांकि, उस वक्त 12वीं पंचवर्षीय योजना लागू थी, जिसे संचालित रहने दिया गया। अब पंचवर्षीय योजनाओं का स्थान नीति आयोग ने ले लिया है। यह संस्थान सरकार के थिंक टैंक के रूप में सेवाएं प्रदान करेगा और उसे निर्देशात्मक एवं नीतिगत गतिशीलता प्रदान करेगा। नीति आयोग, केन्द्र और राज्य स्तरों पर सरकार को नीति के प्रमुख कारकों के संबंध में प्रासंगिक महत्वपूर्ण एवं तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराएगा। इसमें आर्थिक मोर्चे पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आयात, देश के भीतर, साथ ही साथ अन्य देशों की बेहतरीन पद्धतियों का प्रसार नए नीतिगत विचारों का समावेश और विशिष्ट विषयों पर आधारित समर्थन से संबंधित मामले शामिल होंगे।

6.4 नगरीय नीतिः अंतर राष्ट्रीय दृष्टिकोण (Urban Policy: An Inter Country Perspective)

इवान टोरोक के अनुसार, 'राष्ट्रीय नगरीय नीति किसी विशेष दृष्टि अथवा लक्ष्य को हासिल करने के लिये सरकार के स्तर पर की जाने वाली प्रक्रिया और निर्णयों का एक संयुक्त स्वरूप है। इस प्रक्रिया में विभिन्न घटकों में समन्वय के जरिये सुधारात्मक, उत्पादात्मक, समावेशी और निरंतर नगरीय विकास की प्रक्रिया को लंबे समय के लिये संचालित किया जाता है। ऐसी राष्ट्रीय प्रक्रिया निरंतर गतिशील रहती है।' (2014). सामयिक नगरीय नीतियों का सीधा जुड़ाव यूरोपीय नगरों में 19वीं–20वीं सदी में तेजी से हुए विकास से है। ये नगर दुनिया के सबसे बड़े मानवीय व्यवस्था वाले नगर बन गये और इनके कारण भौतिक समन्वय समेत कई सामाजिक चुनौतियां भी उभरीं। (Chandler and Fox, 1974; Hall and Tewdwr-Jones, 2011; Collier and Venables, 2014).

शहरीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण से सीधे तौर पर जुड़ी हुई थी। इस अवधि में श्रमिकों की भारी मांग के चलते लोग ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धन परिस्थितियों से निकलकर शहरों की ओर आये। शहरों के स्थानिक महत्व के पीछे परिवहन सुविधा का बड़ा हाथ रहा। योजना की अवधारणा का जन्म दरअसल नगरीय सुधार के अभियान से हुआ, जिसका कारण निर्धन श्रमिक वर्ग की कठिनाइयों, मलिन जीवनस्तर, निचले स्तर की सुविधाओं और तेजी से हो रहे नगरीय विकास से उपजी परिस्थितियां थीं। ऐसे में पारंपरिक ग्रामीण तरीकों के अनुसार रहने वाले कुछ सामंजस्यपूर्ण समुदायों ने सामाजिक, भौतिक आयामों को नया विचार दिया (Hall, 1988). 1870 के बाद शहरों का तेजी से विस्तार हुआ, जिसके चलते सस्ती परिवहन सुविधा भी योजनाओं का अहम हिस्सा बनी। समय के साथ घोड़ागाड़ी, फिर बिजली से चलने वाले ट्राम और बसें और बड़े शहरों में ट्रेन, सबवे जैसी व्यवस्थाएं विकसित हुईं। 20वीं सदी के शुरुआती दशकों में ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन और अन्य यूरोपीय देशों में औपचारिक नगरीय विकास व्यवस्था ने नगरीय विकास के नये साधनों के साथ संपत्ति विकास के उन गुणों को जन्म दिया, जो इससे पहले कभी अस्तित्व में नहीं थे। एबेनेजर हॉवर्ड (Ebenezer Howard), पैट्रिक गेडेस (Patrick Geddes), ला कॉर्बूजर (Le Corbusier), सिग्फ्रेड गिडियॉन (Sigfried Giedion) जैसे प्रारंभिक विद्वानों और अंतर्राष्ट्रीय बॉहास डिजाइन स्कूल (International Bauhaus Design School) ने भू–उपयोग क्षेत्र, नगरी विस्तार योजनाओं, ग्रीन बेल्ट, गार्डन सिटी, मास्टर प्लानिंग के सिद्धांत दिये जो बेहद प्रभावी साबित हुए और बहुत जल्दी लगभग पूरी दुनिया में इनका प्रसार हुआ। इन सिद्धांतों में सघनता के स्तरों के हिसाब से भवनों की ऊंचाई को सीमित करने, भू–उपयोग की अलग–अलग व्याख्या (विशेष तौर पर आवासीय, औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के लिये भू–उपयोग), यातायात व्यवस्था के पैटर्न को स्पष्ट करने और अनुक्रमाधाारित नगरीय विकास को बढ़ावा देने में मदद मिली। (Hall, 1988, 1998).

स्थानीय शासन अपने अधिकार क्षेत्र में नगरीय पर्यावरण के निर्माण के लिये विकास की गुणवत्ता को नियंत्रित करने, हरित क्षेत्र के संरक्षण और यातायात नियमों को लागू करवाने के लिये पर्याप्त कानूनी शक्तिसंपन्न थे। लोगों के अपनी जमीनों पर मनचाहे विकास पर नियंत्रण के लिये सबसे महत्वपूर्ण साधन भू–उपयोग क्षेत्र का निर्धारण था। लेकिन, इससे कई बार यह विवाद भी खड़े हुए कि निर्धन वर्ग की बड़ी संख्या को एक ही बहुमंजिला इमारत में रहना पड़ता था, जबकि कई अभिजात्य लोगों के आवास

बड़े–बड़े भूखंडों पर बने होते थे। नगरीय क्षेत्रों के भावी प्रारूप (Future Layout) के निर्धारण में राज्य ने नीति निर्देशक की भूमिका निभाई। इन सबका मेल बेहतर सार्वजनिक व्यवस्था के तौर पर सामने आया, हालांकि इसमें भी कई बार अभिजात्य वर्ग को निर्धन वर्ग की अपेक्षा अधिक सहूलियतें प्रदान की जाती थीं। नगरीय योजना एक रैखिक एवं तकनीकी गतिविधि थी, जिसमें स्थानिक दृष्टिकोण या भौतिक रूपरेखा महत्वपूर्ण थी, जिसे मास्टर प्लान कहा जाता है। और यहां आधारभूत मूल्यों के दांव पर लगने की स्थिति पर सवाल उठाने का बेहद सीमित मौका मिलता था। (Hall, 1988).

उत्तरी अमेरिका में भी इसी दौर में औद्योगीकरण और आप्रवासन के फलस्वरूप शहर तेजी से विकसित हो रहे थे। फिलाडेल्फिया का 'Grid Plan' इस महाद्वीप में नगरीय विचार के लिये विशेष रूप से प्रभावी था। यह किसी क्षेत्र के सर्वे और वहां नये शहर के विकास का सबसे आसान तरीका बना। इसने वहां अवस्थापना विकास से जुड़े सभी पहलुओं को स्पष्ट करने के साथ मानकानुरूप प्लॉटों के विकास से भूमि बाजार को विकसित किया, जिन्हें आसानी से बेचा–खरीदा जा सकता था। शहर के आसपास के निम्न सघनता वाले क्षेत्रों में एकल परिवारों के स्वतंत्र आवास की परंपरा भी अमेरिका से ही विस्तारित हुई, जिसने कारों की खरीद को भी बढ़ावा दिया। हालांकि, आवास के अन्य तरीके भी यहां प्रचलित थे। यूरोप में टैरेस वाले जुड़े हुए घर आम थे, मध्य क्षेत्र में आंगन वाले घरों में लोग रहते थे, वहीं अफ्रीकी और एशियाई व्यवस्था में आंगन, चहारदीवारी युक्त छोटे घर पाये जाते थे। 20वीं सदी के कुछ दशकों में ही नगरीय योजना कई यूरोपीय देशों में राजनीतिक शक्ति और सामाजिक दबाव का स्पष्ट हिस्सा बन गयी। बर्लिन, रोम, मैड्रिड, मॉस्को में तानाशाह शासन के दौर में पुनर्विकास के नाम पर भारी मात्रा में ध्वस्तीकरण किया गया, जिसके लिये आम जनता को निष्कासित भी किया गया। इस दौरान आम नागरिकों को सलाह–सुझाव देने अथवा चर्चा का कोई अधिकार नहीं था।

यूरोप और अमेरिकी देशों में नगरीय विकास का तीसरा दृष्टिकोण राष्ट्रीय नगरीय नीति (NUP) उभरा। इसे नव शहरीवाद (New Urbanism) या तीव्र विकास (Smart Growth) कहा गया (UN-Habitat 2013). इसका एक उद्देश्य ऐसे नगरीय स्वरूपों को बढ़ावा देना है जो प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हों। इसके अलावा नगरीय क्षेत्रों को विशेष पहचान दिलाना, वाणिज्यिक–व्यापारिक संपत्तियों का विकास, एकसमान आवासीय क्षेत्र, उपनगरीय क्षेत्रों का नियंत्रण भी इसके लक्ष्य थे। भविष्य को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक यातायात व्यवस्था के हिसाब से भूउपयोग, पारंपरिक विभाजन भी इसमें किया गया। नव शहरवाद ऐसी योजना को बढ़ावा देता है जो सुगठित हो, उच्च सघनता, सम्मिलित विकास करे, जिसमें घर, कार्यक्षेत्र, बाजार, मनोरंजन आदि सुविधाएं निकट होकर निरंतर शहरीकरण के दायरे में आ जायें।

बेहद सघन आबादी वाले क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के प्रोत्साहन के लिये उच्च गुणवत्ता वाले सार्वजनिक स्थान आवश्यक पहलू है। निजी कारों के मुकाबले सार्वजनिक परिवहन सुविधाका इस्तेमाल करने वाले अथवा पैदल–साइकिल पर चलने वालों को भी बेहतर माना जाता है। परिवर्तनोन्मुखी (Transit-oriented) विकास नगर के आसपास सघन आवासीय व्यवस्था में लोगों के बदले मिलने वाली पहुंच

(Accessibility) का पूंजीकरण करना चाहता है। नगरीय योजनाओं को लेकर यह व्यवस्था नगरीय योजनाकारों (Urban Planners) और निर्माणकर्ताओं (Developers) में परंपरागत निर्धारक भूमिका के बजाय संवाद बढ़ाती है, जिसके तहत भूमि पर निर्माण और अवस्थापना संबंधी विकास के अधिकारों के अलावा सार्वजनिक सुविधाओं में योगदान पर सहमति बनती है। अकसर यह तर्क दिया जाता है कि सुगठित एवं एकीकृत नगरीय स्वरूप निम्न सुविधाएं देता हैः 1. शहर की समृद्धि (अनुपूरक गतिविधियों के बेहतर समन्वय एवं संयोजन के जरिये) 2. सामाजिक समावेश (नौकरियों और सुविधाओं तक बेहतर पहुंच के माध्यम से) 3. सामाजिक गतिशीलता और गुणवत्तापरक जीवन (सार्वजनिक सुविधाओं तक लोगों की पहुंच और जीवनशैली में सुधार के जरिये) 4. कम लागत की जनसुविधाएं (भारी मात्रा में अवस्थापना विकास से होने वाली बचत के जरिये) 5. पर्यावरणीय नुकसान को कम करना और मानव सुरक्षा (पुराने भवनों की मरम्मत और पारिस्थितिकी अवस्थापना को होने वाली हानि को कमतर करके). वे शहर जहां इन बिंदुओं की अनदेखी की जाती है, वहां भीड़, प्राकृतिक आपदाओं, असमान बुनियादी सुविधाओं, बेहद सीमित निकाय वित्त और भूमि व आवासों को लेकर सामाजिक–राजनीतिक द्वंद्व की आशंकाएं बनी रहती हैं। ऐसे शहर अवस्थापना के ऐसे जाल में फंस सकते हैं, जहां भू–उपयोग का कोई पैटर्न तय नहीं होता, पानी, उर्जा समेत प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध और अनुपयोगी दोहन किया जाता है और कार्बन उत्सर्जन यहां चरम पर होता है।

चौथा विचार नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक उपेक्षा के मसले से निपटने का है। फ्रेंच विद्वान हेनरी लिफेवर (Henri Lefbvre, 1901-1991) ने सर्वप्रथम इस विचार का प्रस्ताव 'शहर का अधिकार' (Right to the City) के तौर पर दिया। यह दृष्टिकोण बताता है कि शहरीकरण को जितना अधिक महत्व दिया जाता है, राजनीतिक उपेक्षा के मामले उतने ही बढ़ते जाते हैं। ग्रामीण–शहरी पलायन, बड़े पैमाने पर बस्तियों को हटाने के कार्यक्रमों, आर्थिक पुनर्विकास योजनाओं के विस्थापन के प्रभावों से उपजी प्रतिक्रियाओं ने भी इस विचार को उभारा। यह नारा ब्राजील एवं दक्षिणी अफ्रीका जैसे देशों में सामाजिक अभियानों का अभिन्न अंग बन गया। यह विचार लोगों के शहरों की ओर विस्थापित होने के अधिकार से भी आगे की बात करता है। यह मानता है कि एक बार भी शहर में आ जाने के बाद यह लोगों का अधिकार है कि उन्हें औपचारिक तौर पर नागरिक की पहचान मिले। उन्हें उनके भविष्य के लिये तय की जाने वाली नीतियों, योजनाओं के निर्धारण में पर्याप्त भागीदारी मिले, नगरीय संसाधनों, आवास एवं अन्य बुनियादी जनसुविधाओं तक उनकी सीधी और बेहतर पहुंच हो। यह विचार मानता है कि सरकारों को अधिकार मांगने वालों पर आरोप लगाने या उनका दमन करने के बजाय कमियों को स्वीकार करने के साथ सुधार के प्रयास करने चाहिये। जमीन पर अनौपचारिक व्यवस्थाओं और अनौपचारिक उद्यमों की पहचान कर उन्हें तकनीकी योग्यता, संसाधन मुहैया कराकर औपचारिक बनाने के साथ आवास, जनसुविधाएं, व्यापार नियंत्रण के मानकों को पूरा करना चाहिये। डेविड हार्वे (David Harvey) इस कथन के साथ इस विचार को और आगे बढ़ाते हैं, 'शहर का अधिकार नगरीय संसाधनों पर किसी व्यक्ति की पहुंच मात्र तक सीमित नहीं है। वास्तव में यह शहर का बदलाव कर स्वयं के बदलाव की प्रक्रिया है। यह व्यक्तिगत अधिकार नहीं, बल्कि सामान्य और सामूहिक परिवर्तन की प्रक्रिया है, जो सामूहिक शक्ति के जरिये शहरीकरण की प्रक्रिया को अपरिहार्य रूप से रूपांतरित कर सकती है।' (Harvey, 2008, p. 23)

6.5 भारत में नगरीय विकास योजनाएं (Urban Development Plans in India)

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में विकास, रोजगार को लेकर कई योजनाओं का संचालन किया गया। इसके साथ ही विभिन्न विकास परियोजनाओं, कार्यक्रमों के माध्यम से नगरीय क्षेत्रों के विकास को तेजी प्रदान करने के प्रयास किये गये। भारत में आर्थिक, समावेशी विकास के लक्ष्य से संचालित विभिन्न विकास योजनाओं को हम निम्नवत समझ सकते हैं:

1. **1965:** क्रेडिट ऑथोराइजेशन स्कीम (CAS) का लक्ष्य रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के जरिये पूंजी पर नियंत्रण की गुणवत्तापरक व्यवस्था बनाना था।
2. 1966–67: हाई यील्डिंग वेराइटी प्रोग्राम (HYVP) का मकसद खाद्यान्न संकट को दूर करने के लिय फसलों की पैदावार को बढ़ाना और इसके लिये उच्च गुणवत्ता वाले व बीजों, फसलों को अपनाना था
3. **1975:** कमांड एरिया डेवलपमेंट प्रोग्राम (CADP) का लक्ष्य बेहतर सिंचाई सुविधाओं का विकास और इनके जरिये कृषि विकास था
4. **1975:** बीस सूत्री कार्यक्रम (TTP) को गरीबी उन्मूलन और जीवनस्तर में सुधार के लिये आवश्यक सभी बुनियादी उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये संचालित किया गया
5. **1977–78:** डेजर्ट डेवलपमेंट प्रोग्राम (DDP) इस विकास कार्यक्रम का लक्ष्य पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखते हुए मरुस्थल के विस्तार को नियंत्रित करना था
6. **1977–78:** काम के बदले अनाज यानी फूड फॉर वर्क कार्यक्रम का लक्ष्य श्रमिक वर्ग को खाद्यान्न उपलब्ध कराना था
7. **1986:** सब्सिडी एवं ऋण सुविधा के जरिये निर्धन वर्ग को स्वरोजगार के लिये प्रेरित करने के मकसद से सेल्फ इंप्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर द पुअर (SEPUP) कार्यक्रम संचालित हुआ
8. **1990:** नगरीय लघु उद्यमियों की मदद के लिये स्कीम फॉर अर्बन माइक्रो इंटरप्राइजेज (SUME)
9. **1990:** नगरीय निर्धन वर्ग के लिये स्कीम ऑफ अर्बन वेज इंप्लॉयमेंट (SUWE)
10. 1991: काले धन को रोकने के लिये नेशनल हाउसिंग बैंड वॉलन्टियरी डिपॉजिट स्कीम (NHBVDS) संचालित की गयी, जिसके जरिये निर्धन वर्ग के लिये निम्न मूल्य वाले आवास तैयार किये गये
11. **1992:** निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के लिये नेशनल रिन्यूअल फंड (NRF)
12. **1993:** विकास कार्यों को बढ़ावा देने के लिये मेंबर्स ऑफ पार्लियामेंट लोकल एरिया डेवलपमेंट स्कीम (MPLADS)
13. **1994:** बेहतर जल वितरण, सीवेज, नाले–नालियों के निर्माण, परिवहन सुविधा, भू–उपयोग के लिये स्कीम फॉर इंफ्रास्टक्चरल डेवलपमेंट इन मेगा सिटीज (SIDMC) एवं नगरों में बस्तियों के सुधारीकरण के लिये योजनाएं
14. **1994:** बच्चों को घातक उद्योगों में श्रम से निकालकर स्कूलों तक पहुंचाने और शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिये चाइल्ड लेबर इरेडिकेशन स्कीम (CLES)
15. **1995:** स्कूलों में बच्चों के दाखिले, उपस्थिति बढ़ाने के लक्ष्य के साथ उन्हें बेहतर पोषण उपलब्ध कराने के लिये प्राइमरी स्कूलों में मिड–डे मील योजना

16. **1995:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के लिये नेशनल सोशियल असिस्टेंस प्रोग्राम (NSAP)
17. **1997:** महिला साक्षरता दर के लिहाज से बेहद पिछड़े क्षेत्रों में जिलास्तर पर बालिका विद्यालयों की स्थापना कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना (Kastoorba Gandhi Education Scheme) के तहत की गयी
18. **1997:** नगरीय रोजगार की व्यवस्था के लिये स्वर्ण जयंती नगरीय रोजगार योजना
19. **1998:** बालिका शिशुओं की देखभाल और उनके जीवनस्तर में सुधार के लिये भाग्यश्री बाल कल्याण योजना
20. **1999:** वरिष्ठ नागरिकों को दस किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिये अन्नपूर्णा योजना
21. **2000:** गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को बीमा कवर उपलब्ध कराने के लिये जनश्री बीमा योजना
22. **2000:** निर्धन वर्ग को खाद्य सुरक्षा देने के मकसद से अन्त्योदन योजना
23. **2005:** National Child Labour Project (NCLB)
24. **2015:** स्मार्ट सिटी मिशन
25. **2015:** अमृत योजना
26. **2015:** प्रधानमंत्री आवास योजना

6.6 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय नियोजकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे एक समावेशी नगरीय नीति तैयार करेंगे, जो भारत में नगर निकायों को गतिशील करने के साथ निकाय प्रशासन में सुधार, IDSMT कार्यक्रम के जरिये स्थानीय आर्थिकी में निवेश की व्यवस्था, 1989 की NRY की तरह रोजगार के अवसर प्रदान करने और EIUS तथा UBSP योजनाओं के जरिये मलिन बस्तियों में बेहतर सुविधाएं मुहैया कराने का काम कर सकें। (planning tank, 2017). ये सभी कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में क्षेत्रीय अंतर को दूर करने के लिये सक्रिय रूप से लागू किये जाने चाहिये। 74वें संविधान संशोधन को नगर निकायों के जरिये लागू किया जाना चाहिये। नगरीय नीतियों को प्रत्यक्ष और प्रभावी रूप से गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी को खत्म करने पर काम करना चाहिये। नगरीय अनौपचारिक सेक्टरों में श्रमिकों की अच्छी–खासी तादाद है। इन सेक्टरों का उच्चीकरण और नगरीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण किया जाना आवश्यक है।

6.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. नगरीय नीति के बुनियादी सिद्धांत क्या हैं? भारत के सन्दर्भ में इन्हें किस तरह लागू किया गया है?
2. नगरीय विकास कार्यक्रमों को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कैसे लागू किया गया? विस्तार से समझाएं।
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में नगरीय विकास कार्यक्रमों की जानकारी दें। हर योजना के पीछे क्या लक्ष्य और उद्देश्य थे, इसे भी समझाएं।

6.8 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Harvey, D. (2008). "The right to the city", New Left Review, 53, pp. 23-40.

V.Gnaneshwar (1995), "Urban Policies in India Paradoxes and Predicaments",Habitat Intl. Vol. 19, No. 3, Pp. 293-316, 1995

Singh,M.S(2014),shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/31999/.../n14-various%20programme.pdf

Nath. V, "Urbanisation in India: Review & Prospects", EPW. Vol. XXI. No.8, Feb.22, 1986, p .339

Turok, I. (2014). "South Africa's tortured urbanization and the complications of reconstruction". In McGranahan, G. and G. Martine, eds. Urban Growth in Emerging Economies, London: Rutledge.

इकाई– 7

नगरीय शासन की चुनौतियां: नगरीय हिंसा
(Challenges to Urban Governance: Urban Violence)

इकाई की रुपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 शहरीकरण

7.3 शहरीकरण के कारण

7.4 नगरीय क्षेत्र क्या है

7.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व

7.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास

7.7 नगरीय शासन की चुनौतियां

7.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम

7.9 हिंसा की श्रेणियां

7.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम

7.11 निष्कर्ष

17.12 अभ्यास प्रश्न

17.13 सहायक अध्ययन

17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम यह समझ और विश्लेषण कर पाएंगेः

1. नगरों में नगरीय शासन और हिंसा की अवधारणा
2. नगरों में हिंसा के परिणाम और कारण

7.1 परिचय (Introduction)

पूरा विश्व शहरीकरण के इजाफे का साक्षी बना हुआ है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और विकास में शहरों का महत्व भी बढ़ रहा है। शहरीकरण के साथ नगरों में शासन के पारंपरिक तरीकों (ऊपर से नीचे की ओर) में भी बदलाव आया है, पुराने तरीके अप्रासंगिक हो गये हैं। सेवाओं–सुविधाओं में सुधार, सहभागिता के नये रास्ते, पारदर्शिता में वृद्धि और आधुनिक प्रशासन आज की जरूरत बन गये हैं। इन जरूरतों को पूरा करने के लिये नयी व्यवस्थाओं और कामकाज के तरीकों के विकास की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही यह भी महसूस किया जाता है कि स्थानीय नगरीय निकायों की मौजूदा क्षमता जरूरत के हिसाब से कम है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिये।

7.2 शहरीकरण (Urbanization)

शहरीकरण का तात्पर्य पारंपरिक तरीकों से आधुनिकता की ओर बढ़ने से है। यह कृषि आधारित समाज से औद्योगिक समाज तक का रूपांतरण है। यह जीवनशैली में बदलाव का जरिया बनता है, जिसमें जीवन अनौपचारिक के बजाय औपचारिक हो जाता है और शारीरिक सुविधाओं के लिये यह भौतिकता को बढ़ावा देता है। शहरीकरण मानव संबंधों में भी परिवर्तन की वजह बनता है। इसके चलते संबंधों में प्रगाढ़ता की जगह अवैयक्तिकता और वर्गीकृत संपर्क–संबंध बढ़ते हैं। यह उत्पादन के साधनों में भी बदलाव करता है। इससे उत्पादन के साधन मानवीय नहीं रहते, बल्कि यांत्रिक हो जाते हैं। इस प्रकार शहरीकरण की प्रक्रिया अवसरों की उपलब्धता, रोजगार की मौजूदगी और सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव का सबब बनती है। शहरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों से आबादी के नगरीय क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण की भी प्रक्रिया है।

7.3 शहरीकरण के कारण (Causes of Urbanization)

जैसाकि हम जानते हैं कृषि ग्राम्य जीवन का आधार है, इसी तरह औद्योगिकता शहरों का निर्माण करती है। इसीलिये शहरीकरण की प्रक्रिया में कृषि आधारित समाज स्वयं को औद्योगिक समाज में रूपांतरित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर आबादी का स्थानांतरण दो प्रमुख घटकों से होता है। ये हैं, दबाव (Push Factor) और खिंचाव (Pull Factor)। हालांकि, प्रथम दृष्ट्या ये दोनों घटक एक–दूसरे से अलग नजर आते हैं, लेकिन वास्तव में पूरी प्रक्रिया में इन दोनों को विभक्त नहीं किया जा सकता। दबाव के कारकों की बात करें तो इन्हें इस तरह समझा जा सकता है–

1. कृषि आधारित क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ती है तो भूमि सीमित होती जाती है। इससे आबादी के बड़े हिस्से के लिए जीवनयापन कठिन होता जाता है और वे अस्तित्व के लिये अकृषि आधारित विकल्पों की तलाश करने लगते हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के बेहद सीमित अवसर उपलब्ध होते हैं।
3. ग्रामीण कार्यों में कामगारों की अधिकता के चलते लोगों की आय पर असर पड़ता है।
4. सीमित ग्राम्य जीवन सामाजिक लिहाज से कठिनाइयों को पैदा करता है, इससे यहां रहने वाले लोग सामाजिक सुरक्षा, संपत्ति, बेहतर रोजगार के अवसर, जीवन संसाधनों की अधिकता, सुविधाओं की उपलब्धता, अधिक स्वतंत्रता और खुलेपन, शैक्षिक–सांस्कृतिक और स्वास्थ्य समेत जीवन के लिए उपयोगी विभिन्न सुविधाओं को हासिल करना चाहते हैं।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में उग्रवाद भी ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन की वजह बनता है।

इसी तरह खिंचाव घटक को इस तरह समझा जा सकता है–

1. शहरों में शैक्षिक संस्थान, सड़कें, पेयजल–बिजली जैसी जीवनोपयोगी सुविधाएं और सामाजिक लिहाज से आकर्षक संसाधनों की उपलब्धता रहती है।
2. नगरीय इलाकों में परिवहन के बेहतर और त्वरित संसाधन उपलब्ध होते हैं।
3. भारत में धार्मिक केन्द्र भी शहर केन्द्रित हैं।
4. पलायन करके आने वाले लोगों, शरणार्थियों के पुनर्वास के लिये नगरीय इलाकों के आसपास ही व्यवस्था की जाती है।
5. उपभोक्तावादी बाजार की संस्कृति लोगों को कस्बों और शहरों की ओर आकर्षित करती है।
6. रोजगार में बेहतर साधन हासिल करने के अवसर नगरीय क्षेत्रों में पर्याप्त उपलब्ध होते हैं।
7. यह माना जाता है कि नगरीय क्षेत्र में रहना किसी व्यक्ति की पहचान को बढ़ाता है।
8. शहर ऐसे खुले समाज को बढ़ावा देता है, जहां हर व्यक्ति के कामकाज और जीवनशैली का अपना तरीका होता है, जिसमें अन्य किसी का हस्तक्षेप नहीं होता

7.4 नगरीय क्षेत्र क्या है (What is an Urban Area)

नगरीय क्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसे औपचारिक तौर पर वैधानिक ढांचे की ओर से नगरीय घोषित किया गया है और जहां स्थानीय नगर निकाय, नोटिफाइड एरिया या छावनी परिषद की स्थापना की गयी हो। प्रदेश सरकारों की ओर से इन निकायों में विकास और अन्य आवश्यक कार्यों को संपन्न करने के लिये 'म्यूनिसिपल एक्ट' बनाये गये हैं। इनके अलावा भी जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर कुछ क्षेत्रों को

नगरीय माना जा सकता है। जनसंख्या के आधार पर किसी क्षेत्र को नगरीय मानने के लिये इन तीन कारकों का होना आवश्यक है– 1. न्यूनतम जनसंख्या 5000 होनी चाहिये, 2. जनसंख्या घनत्व चार सौ प्रति वर्ग किलोमीटर होना चाहिये, 3. उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी का 75 प्रतिशत हिस्सा अकृषि कार्यों से संबद्ध होना चाहिये

7.5 नगरीय शासन का अर्थ और महत्व (Meaning and Importance of Urban Governance)

शासन (Governance) का अर्थ और उद्देश्य सरकार (Government) से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत होता है। सरकार का अर्थ राजनीतिक वर्ग की आंतरिक और बाह्य रुचियों को पूर्ण करने के लिये शक्ति–सत्ता के उपयोग हेतु बनायी गयी सांस्थानिक व्यवस्थाओं और मशीनरी से है। दूसरी ओर, शासन का अर्थ उस प्रक्रिया से है, जिसके जरिये समाज के लाभ के लिए आधिकारिक निर्णय लिये जाने के अलावा इनका नियमन और नियंत्रण किया जाता है। सरकार मूलतः शासन का सर्वाधिक शक्तिशाली और मुख्य तत्व है। हालांकि, मौजूदा दौर में खुले बाजार (Free Market), निजीकरण, ढांचागत व्यवस्थाओं, विकेन्द्रीकरण और विनियमन जैसे मसलों के चलते सरकारी नियंत्रण का आकार और प्रवृत्ति कुछ हद तक सीमित हुई है। गैरसरकारी स्वयंसेवी संस्थाएं (NGOs) आज विकास प्रक्रिया में अहम भूमिका निभा रही हैं। कॉरपोरेट सेक्टर भी अच्छे शासन (Good Governance) में भूमिका निर्वाह करता है और जनता की खुशहाली में योगदान करता है। कई देशों में सरकार की लोकतांत्रिक व्यवस्था पारदर्शिता के अभाव, शक्तियों के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और घपले–घोटालों की समस्या से जूझ रही है। ऐसे में अच्छे नगरीय शासन की अवधारणा इन समस्याओं से निजात के तरीके के तौर पर उभरती है। शक्तियां सरकार के आंतरिक और बाह्य अधिकरणों (Authorities) एवं संस्थानों (Institutions) में निहित होती हैं, जो प्राथमिकताओं (Priorities) को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कारकों के संबधों को आधार बनाते हुए आवश्यक निर्णय लेती हैं। नगरीय शासन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, 'यह व्यक्तिगत और सांस्थानिक, निजी और सार्वजनिक, योजना एवं प्रबंधन के विभिन्न माध्यमों का संयोग है जो शहर के सामान्य मामलों को नियंत्रित, निर्धारित करता है। यह एक ऐसी सतत प्रक्रिया है, जिससे द्वंद्वात्मक और विभिन्न रुचियों वाले कारकों को समायोजित कर समन्वित सहयोगी (Cooperative) कदम उठाना संभव हो पाता है। यह औपचारिक संस्थानों के अलावा अनौपचारिक व्यवस्थाओं को भी समाविष्ट करके नागरिकों की सामाजिक स्थिति को नियंत्रित रखता है।' (Rao:2004)

7.6 भारत में नगरीय सरकार का विकास (Evolution of Urban Government in India)

भारत में नगरीय सरकार का विकास शासन के केन्द्रीकरण की व्यवस्था से हुआ। प्राचीन भारत ग्रामीण गणतांत्रिक था, लेकिन शासक नगरों की भी स्थापना किया करते थे। वैदिक काल के नगरों और प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में बहुत कम विवरण उपलब्ध है। गुप्तकाल में नगरीय शासन व्यवस्था का जिम्मा केन्द्रीय स्तर पर नियुक्त 'पुरपाल' करते थे। पुरपाल का सहयोग एक समिति करती थी। इस तरह की नगर समितियां प्राचीन भारतीय प्रशासन व्यवस्था में आम थीं। मध्यकाल में केन्द्रीय शासक स्थानीय मामलों की देखरेख अच्छी तरह नहीं कर सकते थे। इसके लिए उन्हें स्थानीय निकाय की

आवश्यकता हुई जो स्थानीय मसलों को सुलझाने के अलावा राजस्व संग्रहण भी कर सकें। स्थानीय प्रशासन की यह व्यवस्था शासक (राजा) के प्रतिनिधियों द्वारा संभाली जाती थी। आम जनता प्रबंधन से नहीं जुड़ी होती थी। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में 'कोतवाल' स्थानीय मामलों का निस्तारण तो करता था, लेकिन आम जनता के प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं था। (Altekar 1949).

केंद्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था में बदलाव औपनिवेशिक दौर में सामने आया। ईस्ट इंडिया कंपनी का मकसद व्यापार था, लेकिन इसके साथ उसे भारत में रह रहे ब्रिटिश नागरिकों की स्वास्थ्य रक्षा, पुलिस प्रबंधन के लिए राजस्व संग्रहण और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए कुछ नियमन की भी आवश्यकता हुई। हालांकि, इसका उद्देश्य स्थानीय शासन की स्थापना नहीं था। 1858 तक भी ब्रिटिश रानी के शासन ने भारत में आम नागरिकों की सहभागिता और उनके प्रति उत्तरदायित्व के भाव से स्थानीय शासन की व्यवस्था के कोई प्रयास नहीं किए। 1882 में लॉड रिपन ने पहली बार स्थानीय प्रशासन का प्रस्ताव रखा, जिसमें स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिये निर्वाचित इकाई की जरूरत जताई गई।

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles) में अनुच्छेद 40 में नगरीय निकायों (Urban Bodies) की तरह ग्राम पंचायतों के गठन की व्यवस्था दी गयी, जिसमें राज्य का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वह पंचायतों का गठन कर इन्हें इस तरह शक्ति प्रदान करे कि वे स्वायत्त सरकार (Self Government) के रूप में कार्य कर सकें। स्वतंत्रता के पश्चात अव्यापी और अनुपयोगी निकाय नियमों, अकुशल कर्मचारियों, कमजोर वित्तीय व्यवस्था और तंगहाली नगरीय सरकारों के विकास में रोड़ा बन गयीं। 'राज्य सरकारों ने नगरीय निकायों से संबंधित नियमों को लेकर दोहरी (Ambivalent) नीति अपनायी। कागजों पर तो निकायों को शक्तियां प्रदान की गयीं, लेकिन धरातल पर निकायों के इन शक्तियों के उपयोग पर कई तरह के नियंत्रण और अवरोध लगा दिये गये।' (Bhattacharya: 1976).

वर्ष 1985 इस दिशा में इस लिहाज से प्रतिमान माना जाता है कि इसी साल केंद्रीय स्तर पर नगरीय विकास मंत्रालय (Ministry of Urban Development) का गठन स्वतंत्र रूप से किया गया। इससे पूर्व यह अलग–अलग मंत्रालयों के अधीन हुआ करता था। इससे शहरीकरण की तेज गति के बावजूद भारत में शहरीकरण की व्यापक और सुपरिभाषित नीति तय नहीं थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 65वें संविधान संशोधन बिल में नगर निकायों को आवश्यक शक्तियां प्रदान करने और उन पर से वित्तीय नियंत्रण हटाने की जरूरत जतायी, ताकि वे स्वायत्त सरकार के रूप में कार्य कर सकें। हालांकि, लोकसभा में पारित होने के बावजूद वर्ष 1989 में यह बिल राज्यसभा में गिर गया। 16 सितंबर 1991 को केंद्र सरकार ने नगर निकायों को लेकर संविधान संशोधन बिल लोकसभा में रखा। यह बिल मूलतः 65वें संशोधन बिल पर ही आधारित था, लेकिन इसमें कुछ जरूरी बदलाव किये गये थे। यह बिल संविधान में एक नया हिस्सा (जिसे भाग 9ए या Part IX A कहा गया) जोड़ने के लिये रखा गया। इस भाग में नगर निकायों के ढांचे, संरचना, सीटों के आरक्षण, चुनाव व्यवस्था और प्रक्रिया, वित्तीय और अन्य प्रावधानों को शामिल किया गया।

वर्ष 1992 में संसद ने संविधान के 74वें संशोधन एक्ट (CAA 1992) को पारित कर दिया और एक जून 1993 से यह लागू भी हो गया। इससे सभी राज्य सरकारों के लिये एक साल के भीतर अपने निकाय नियमों में बदलाव करना अनिवार्य बना। यह कानून भारत में नगरीय स्थानीय निकायों के लिए ऐतिहासिक माना जाता है। यह ऐसी समुचित वैधानिक व्यवस्था देता है, जिससे नगरीय निकायों में लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित हो सके। यह समाज के सभी वर्गों को निकायों में प्रतिनिधित्व के साथ नगरीय निकायों में व्यवस्थित वैधानिक प्रक्रिया को बढ़ाता है। इस एक्ट से स्थानीय सरकारों को पहली बार संवैधानिक स्थापना (Status) मिली। इस प्रकार स्थानीय सरकारें संवैधानिक प्रक्रिया के तहत स्थापित होती हैं और इस प्रक्रिया में राज्य के नियम शामिल होते हैं। स्थानीय निकायों का गठन राज्य की शाखा के रूप में नहीं होता है। 74वां संशोधन इस बात पर जोर देता है कि राज्य आमजनों तक शक्तियां प्रदान करें ताकि वे अपने लिये योजनाएं बना सकें और इसके लिए आवश्यक निर्णय भी ले सकें। इस प्रकार यह संशोधन बिल नगर निकायों के लिए संवैधानिक ढांचा तय करता है। इस एक्ट के प्रावधान राज्यों (States) के अलावा केन्द्रशासित राज्यों (Union Territories) पर भी लागू होते हैं। यह बिल अनिवार्य प्रावधानों के अलावा विवेकाधीन प्रावधानों की भी व्यवस्था देता है जो पूरे देश में लागू हैं।

अनिवार्य प्रावधानों में एकसमान ढांचा, स्थायित्व, प्रतिनिधित्व, वार्ड समितियां, जिला या महानगरीय योजना समितियां, वित्तीय आयोग, राज्य चुनाव आयोग आदि शामिल हैं। स्थानीय सरकार चूंकि राज्य का विषय है, लिहाजा विवेकाधीन प्रावधान राज्यों पर ही छोड़े गये हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि राज्य स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप इनका उपयोग कर सके। इस प्रकार भारत में संविधान ने ही स्थानीय निकायों के विकास की व्यवस्था दी है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्थानीय विकास के लिये योजनाएं बनाने, विकास कार्यक्रमों के निष्पादन और नगरीय गरीबी को पाटने में अहम भूमिका निभायें।

7.7 नगरीय शासन की चुनौतियां (Challenges of Urban Governance)

शहरीकरण की तेज गति ने विभिन्न देशों में हिंसात्मक गतिविधियों और असुरक्षा की भावना को भी बढ़ाया है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के महानगरों (Mega Cities) तो विशेष रूप से प्रभावित हैं ही, औद्योगिक नगरों में भी नगरीय हिंसा और आपराधिक गतिविधियों में बढ़ोतरी हुई है। पूरे विश्व में आधी से अधिक आबादी अब शहरों में रहती है और आबादी का बड़ा हिस्सा शहरों में मिलने वाले अवसरों से लाभान्वित होता है, लेकिन फिर भी कई लोग शिक्षा, श्रम, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से आगे बढ़ पाने में बाधाओं का सामना करते हैं। सामाजिक अन्याय, उद्देश्यों का अभाव, अवसरों की कमी आदि पहलू निर्धनता को बढ़ावा देते हैं। इस सबसे एक ऐसा वातावरण बनता है, जो हिंसात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने की वजह बन जाता है। विशेषतः उन स्थानों पर जहां सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के बेहद सीमित अवसर हों। इसके परिणामस्वरूप नगरीय क्षेत्रों में विभाजन उभरता है, जो सामुदायिक चहारदीवारियों (Gated Communities), बस्तियों (Slums) और गरीब इलाकों के तौर पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस तरह की परिस्थितियां आपराधिक गतिविधियों और नेटवर्क को बढ़ावा देती हैं, विशेषतः उन स्थानों में जहां मूलभूत जनसुविधाओं को लेकर नीतियां अस्पष्ट और अनुपयोगी

हों। ऐसे क्षेत्रों में आपराधिक गिरोह अवसरों से वंचित युवाओं को कामयाबी का झांसा देकर अपराध की ओर मोड़ते हैं। दूसरी ओर, महिलाएं घरेलू, यौन और शारीरिक हिंसा का शिकार बनती हैं। इस तरह के अपराध और हिंसात्मक वातावरण धीरे–धीरे राष्ट्रीय और स्थानीय शासन के नियंत्रण के नष्ट होने की वजह बनता है और शक्तियों पर राज्य का नियंत्रण भी कम होता जाता है।

7.8 नगरीय हिंसा की अवधारणा एवं माध्यम (Concept and Methods of Urban Violence)

हिंसा की व्यापक संकल्पना घटनाओं की विस्तृत श्रृंखला को सामने लाती है। ढांचागत हिंसा में समाज के उपेक्षित हिस्से की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक बाधाएं अहम कारक हैं, जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थानों की नीतियों की वजह से पैदा होती हैं (Galtung 1969)। शेपर, ह्यूज और बोर्जोआ (2004) इसे 'गरीबी, भूख, सामाजिक बहिष्कार और असम्मान से उत्पन्न हिंसा' मानते हैं। सांस्कृतिक हिंसा का तात्पर्य उस स्थिति से है, जब संस्कृति की कोई धारणा ढांचागत हिंसा या शारीरिक हिंसा को आश्रय अथवा वैधता देती है (Galtung 1990)। इन विस्तृत अवधारणाओं से यह माना जा सकता है कि हिंसा पीड़ितों (Victims) और हमलावरों (Agressors) के बीच शक्तियों की असमानता का परिणाम है, लेकिन इसमें काल्पनिक विस्तार का खतरा बना रहता है (Sartori 1970), क्योंकि यह स्थिति हिंसात्मक घटनाओं की अंतहीन श्रृंखला की धारणा को बढ़ाती है।

हिंसा शब्द को इस तरह परिभाषित किया जाता है– किसी व्यक्ति, समुदाय या सामाजिक समूह पर शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से बल का इस्तेमाल या इस्तेमाल की धमकी। शक्तियों की असमानताओं के चलते इनसे जुड़े लोगों को हिंसात्मक रूप से और अधिक ताकत मिलती है जो समाज और राज्य के बीच विवादास्पद मुद्दों को जन्म देते हैं। ये मसले स्वयं राज्य (State) में अंतर्निहीत रहते हैं, जबकि सामाजिक तत्वों में भी विशिष्ट रूप से उपस्थित होते हैं।

जब भी अपराध और हिंसा की बात की जाती है तो लंबे समय से यही माना जाता रहा है कि ये दोनों विषय मूलतः बस्तियों (Slums) से जुड़े हुए हैं। इस धारणा ने सार्वजनिक नीति निर्माताओं (Public Policy Makers) के मन में बस्तियों के प्रति नकारात्मक विचारों को बढ़ावा दिया। हालांकि, धीरे–धीरे यह तथ्य भी सामने आया कि बस्तियों में रहने वाले लोग आपराधिक गतिविधियों के मुख्य स्रोत नहीं हैं। बस्तियों में रहने वाले लोग (Slum Dwellers) सांगठनिक अपराध के मामले में बस्तियों में नहीं रहने वाले लोगों (Non Slum Dwellers) के मुकाबले जल्दी और अधिक अनावृत्त (Exposed) हो जाते हैं। इसकी मुख्य वजह सार्वजनिक आवास सुविधाओं का अभाव और अन्य जनहितकारी नीतियों में बस्तीवासियों को उपेक्षित रखना है। इससे यह भी साफ हुआ कि बस्तियों में रहने वाले लोग अपराध से अधिक पीड़ित होते हैं। हालांकि कुछ बस्तियों (विशेषतः शहरों के भीतर की पारंपरिक बस्तियां) में अपराध और हिंसा की अधिक घटनाएं सामने आ सकती हैं। इसका कारण यहां रहने वाले लोगों का अस्थायित्व, परस्पर विरोधी संस्कृति और सामाजिक तौर–तरीके हो सकते हैं।

7.9 हिंसा की श्रेणियां (Categories of Violence)

हिंसा को सामान्यतः दूसरों को क्षति पहुंचाने वाले शारीरिक बल के तौर पर परिभाषित किया जाता है। व्यापक परिभाषाओं में मनोवैज्ञानिक क्षति और भौतिक हानि को भी शामिल किया जाता है। अधिकतर परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि हिंसा दरअसल एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी खास लाभ या वस्तु को पाने के मकसद से शक्ति के दुरुपयोग को मान्यता दी जाती है। हिंसा की परिभाषा टकराव या

संघर्ष (Conflict) और अपराध से अकसर अलग होती है, हालांकि इनमें कई विशिष्ट समानताएं भी पायी जाती हैं। शक्तियों को लेकर होने वाले संघर्ष या टकराव में यह आवश्यक नहीं है कि किसी को शारीरिक या मानसिक रूप से नुकसान हो, जबकि हिंसा की प्रकृति ही नुकसान पहुंचाने की होती है। इसी तरह अपराध में भी हिंसा अनिवार्य नहीं होती। हिंसा को निम्न श्रेणियों से समझा जा सकता हैः

क्रम	हिंसा का प्रकार	अपराधी / पीड़ित
1	राजनीतिक (Political)	राज्य और गैर राज्य (State and Non State)
2	संस्थागत (Institutional)	1. राज्य और अनौपचारिक व्यवस्थाएं (State and Informal) 2. निजी क्षेत्र (Private Sectors)
3	आर्थिक (Economic)	1. संगठित अपराध (Organized Crime) 2. व्यावसायिक लाभ (Business Interests) 3. दायित्वों का अपालन (Delinquents) 4. लुटेरे (Robbers)
4	आर्थिक–सामाजिक (Economic-Social)	1. गिरोह (Gangs) 2. लावारिस बच्चे (Street Children) 3. पारंपरिक हिंसा (Ethnic Violence)
5	सामाजिक (Social)	1. यौन हिंसा, दुराचार (Sexual Violence, Rape) 2. घरेलू हिंसा (Violence at Home) 3. बच्चों का शोषण (Child Abuse) 4. अभिभावकों–बच्चों के अंतर्विरोध, पीढ़ीगत अंतर (Inter Generational Conflict Between Children And Parents) 5. निष्कारण / दैनिक हिंसा (Gratuitous/Routine Violence)

यद्यपि नगरीय हिंसा की विभिन्न श्रेणियों में बहुत अधिक विभाजन या अंतर नहीं है, लेकिन नीति नियंता इन श्रेणियों के हिसाब से घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर इनकी रोकथाम के कदम उठाते हैं। सामाजिक हिंसा में सबसे अधिक मामले लैंगिक हिंसा (Gender Violence) के सामने आते हैं। इनमें पुरुषवादी व्यवस्था में महिला अधिकारों का हनन, घरेलू हिंसा, पति द्वारा मारपीट, बच्चों के साथ अपराध और यौन शोषण आदि शामिल हैं। इस तरह की हिंसा में पारंपरिक, क्षेत्रीय अथवा पहचान आधारित गिरोहात्मक हिंसा भी आती है। आर्थिक हिंसा का मूल वस्तुओं और लाभ का मकसद होता है। इसमें सड़कों पर होने वाले अपराध (छिनैती, लूटमार, जेब काटना आदि), नशे का कारोबार, अपहरण आदि शामिल हैं।

संस्थागत अपराध सांगठनिक अपराध होते हैं, जिसमें पुलिस, न्यायिक व्यवस्था, राज्यगत संस्थाएं, स्वास्थ्य–शिक्षा समेत विभिन्न सरकारी विभागों–मंत्रालयों के अधिकारी और राज्य के बाहर की संस्थाओं,

प्राइवेट सेक्टर आते हैं। राजनीतिक अपराध का सीधा अर्थ उन प्रक्रियाओं से है, जिसमें राजनीतिक शक्तियों को हासिल करने के लिये गुरिल्ला युद्ध, सैन्य विद्रोह और राजनीतिक हत्याएं जैसे अपराध किये जाते हैं। यद्यपि राजनीतिक अपराध को सीधे तौर पर विद्रोहात्मक संघर्षों और युद्धकाल की प्रक्रिया माना जाता है, लेकिन कई बार शांतिकाल में भी यह सांगठनिक अपराध की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। चूंकि हिंसा की बेहद गतिशील और व्यापक घटनाओं की प्रक्रिया को सांख्यिकीय आधार पर बांधना पूरी तरह संभव नहीं है, लिहाजा अपराध और हिंसा को समझने के लिये इस तरह की श्रेणियां बांटी गयी हैं, ताकि अलग–अलग तरह के अपराधों के परस्पर संबंध और संपर्क को समझा जा सके। हिंसा हमेशा शारीरिक तौर पर ही प्रकट नहीं होती, बल्कि ढांचागत भी होती है। जैसाकि गलटंग (Galtung) ने हिंसा को सिर्फ नृशंस अपराधों से आगे सामाजिक व्यवस्थाओं में शोषण, सामाजिक असमानता, अन्याय, उपेक्षा आदि तक विस्तार दिया है।

महानगरों में सांगठनिक हिंसा के मामले और इनके कारण मौत की संख्या बेहद गंभीर हैं। इस तरह की हिंसा के परिणाम पारंपरिक सैन्य विद्रोह और युद्धों से कहीं अधिक भयावह हैं।

7.10 नगरीय हिंसा के कारण एवं परिणाम (Causes and Consequences of Violence)

असमान शक्ति संबंधों से संबद्ध हिंसा के ढांचागत कारणों की विशेषता और परिस्थितिगत खतरे के कारणों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके जरिये हिंसा की संभावनाओं को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिये लैंगिक हिंसा के जोखिम (Risk Factors) में सामान्यतः नशा और शराब का उपयोग भी जुड़ते हैं। इस तरह ढांचागत अध्ययन के लिये समग्र दृष्टिकोण की जरूरत होती है, जो पारिस्थितिकीय मॉडल से मिल सकती है। इस मॉडल में उन तरीकों का अध्ययन किया जाता है, जिसमें विभिन्न स्तरों (व्यक्तिगत, अंतर्वैयक्तिक, संस्थागत और व्यवस्थागत) की हिंसात्मक गतिविधियां सामने आती हैं। एक अन्य मॉडल में लोगों के परिस्थितिगत हिंसात्मक अनुभवों, हिंसा के कारणों की पहचान की जाती है।

चूंकि शक्ति और शक्तिहीनता हिंसा को समझने के आधार हैं, यह मॉडल विस्तृत राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक ढांचे को व्यक्तिगत वास्तविकता के आधार पर समझने में मदद करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंसात्मक अनुभव लिंगभेद, आयु, परंपराओं और जाति के आधार पर समझे जा सकते हैं। पहचान मानव समुदाय से गहराई से संबद्ध होती है और कई बार संसाधनों पर प्रतिबंधों के कारण व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति और पहचान के लिये वैकल्पिक रास्तों की तलाश करता है। सामाजिक ढांचे में सहिष्णुता के स्तरों को आसानी से देखा जा सकता है जो हिंसात्मक गतिविधियों को कम करने वाली नीतियों के निष्पादन में प्रभावी होते हैं। उदाहरण के लिये, समुदायों में घरेलू हिंसा और मादक द्रव्यों के सेवन की सामाजिक स्वीकार्यता हिंसा को बढ़ावा तो देती है, लेकिन प्रभावी रक्षात्मकता का भी काम करती है। नगरीय संदर्भों में वे सीमाएं अकसर वाद–विवाद का विषय बनती हैं, जिनके आधार पर निर्धनता और असमानता को हिंसा की वजह माना जाता है। निर्धनता को सामन्यतः लंबे समय से हिंसा का कारण माना जाता रहा है, लेकिन बाद के शोधों से यह साफ हुआ है कि असमानता का भाव

निर्धनता से कहीं अधिक हिंसा को बढ़ावा देता है। नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों के मुकाबले आर्थिक असमानता हिंसा का बड़ा कारण है। कुछ विश्लेषक मानते हैं कि हिंसा के बढ़ते स्तर वैश्वीकरण, ढांचागत समायोजनों और राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम हैं।

इसी तरह नगरीय क्षेत्रों में निर्धन लोगों की दैनिक जीवनशैली विद्रोह, अपराध और हिंसा की आशंका को बढ़ाती है। अपराध का राजनीतिकरण (Politicization of Crime) नये दौर का उभरता हुआ संदर्भ है, जिसमें राज्यगत संस्थाओं को सामाजिक शासन की गैरराज्यगत, निजी संस्थाओं और व्यवस्था से चुनौती मिलती है। युद्धों का शहरीकरण (Urbanization of Warfare) उन क्षेत्रों में अकसर सामने आने लगा है, जो हाल में युद्धों के परिणामस्वरूप उभरे हैं। युद्धों का यह बदलता स्वरूप संगठित अपराध से जुड़े लोगों को लाभ पहुंचाता है। शहरों और उनके आसपास हिंसा के स्थानीय कारण भी सामने आते हैं, इनमें असुरक्षित स्थान (अंधेरी गलियां, निर्जन बस स्टॉप, सार्वजनिक शौचालय आदि) शामिल हैं, जहां दुराचार, लूटमार जैसे अपराध घटित होते हैं। नगरीय क्षेत्रों में अपराध के स्तर में इस तरह बढ़ावा होने से राज्य की ओर से प्रभावी सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध करा पाने पर विश्वास घटता है। समृद्ध लोग मजबूत चहारदीवारियों के भीतर रहते हैं और परिवहन के लिये विशेष सुविधाओं का इस्तेमाल करते हैं, जबकि सुरक्षा का जिम्मा निजी व्यवस्थाओं को दिया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया उन्हें उन निर्धन लोगों से अलग करती है जो अकसर हिंसा के पीड़ित के रूप में सामने आते हैं।

हिंसा के कारकों पर नजर डालें तो ये मुख्यतः अपराध के मूल्य और परिणाम हैं। सर्वाधिक प्रासंगिक शोध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मूल्यों की श्रेणियों पर आधारित हैं। प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्यों ने इन शोधों को आगे बढ़ाने में मदद की है, इन्हें इस तरह समझा जा सकता है। अपराधों की वजह से होने वाली मौतें और विकलांगता व इनसे होने वाला नुकसान, जीएनपी और जीडीपी का हिस्सा बनने वाले संपत्ति संबंधी अपराध। इस तरह के मानक अपराध के व्यक्ति और समाज पर होने वाले प्रभाव को समझने में सहायक होते हैं और इनके जरिये अन्य सामाजिक बुराइयों के मूल्यों से तुलनात्मक अध्ययन के जरिये महत्वपूर्ण नीतियों को लागू करने में मदद मिल सकती है। हालांकि, कई बार अपराधों की वजह से होने वाले पुलिस, न्याय व्यवस्था, कानून व्यवस्था और सैन्य बलों के खर्चों तक पहुंच नहीं हो पाने से मूल्य मूल्यांकन में अवरोध भी आता है। इसी तरह अप्रत्यक्ष मूल्यों –जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक कारक भी शामिल होते हैं– का भी भरोसेमंद मात्रात्मक आंकड़ा भी उपलब्ध नहीं होता। वृहद अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर पूंजीगत संपदाओं के पांच तरीकों को ही मान्य माना जाता है। ये हैं– भौतिक (Physical), वित्तीय (Financial), मानवीय (Human), सामाजिक (Social) और प्राकृतिक (Natural)। अपराधों के परिणामों को इन पांचों पर आपराधिक गतिविधियों के कारण होने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों से देखा जा सकता है। हिंसा और अपराध वित्तीय संपदा को नुकसान पहुंचाती है, जिससे आपराधिक न्याय सेवाओं और स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाओं पर खर्चा बढ़ता है, जबकि निवेश में भारी कमी आती है। मानवीय पूंजीगत मूल्यों में इस लिहाज से कमी आती है कि अपराधों के कारण जीवनस्तर में कमी आती है, शैक्षिक अवसर घटते हैं और उत्पादन की क्षमता में भी गिरावट आती है, जिसका असर वित्तीय पूंजी पर पड़ता है। जीवनशैली के स्तर में गिरावट, भय का माहौल और असुरक्षा की भावना जैसे पहलू सामुदायिक जीवन में विश्वास का अभाव पैदा करते हैं और सामाजिक पूंजी पर असर डालते हैं।

शहरीकरण में संचयीकरण की अवधारणा की बढ़ोतरी के साथ अपराधों और सामाजिक ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा मिला है, जिसने सुरक्षात्मक मानकों को बढ़ाया है। इन मानकों को बढ़ावा देने में समाज के धनाढ्य वर्ग का हाथ है। इन सुरक्षात्मक मानकों का एक उदाहरण भवन निर्माण में 'बंकर शैली' है, जिसे सिटाडेल (Citadel), फोर्टिफाइड (Fortified) और पैरानॉइड (Paranoid) स्थापत्य भी कहा जाता है। **नगरीय** विकास में अब गेटों, बैरियरों और दीवारों, सुरक्षा गार्डों, इंफ्रारेड सेंसर सिस्टम, पैनिक रूम, मोशन डिटेक्टर, पुलिस विभाग के साथ त्वरित प्रक्रिया वाले उपकरण, सर्विलांस सिस्टम, सीसीटीवी जैसी व्यवस्थाओं का महत्व बढ़ता जा रहा है।

7.11 निष्कर्ष (Conclusion)

दुनिया भर के शहरों में भय का मुद्दा बड़ा होता जा रहा है। निरंतर और नियमित रूप से होने वाले दैनिक अपराध–हिंसा स्थानीय जनता के जीवन पर बड़ा असर डालते हैं। इन अपराधों का डर निर्धन वर्ग को अपने घरों में ही रहने पर मजबूर करता है तो धनाढ्य वर्ग को अलग क्षेत्रों में जाने पर। यह पृथक्कीकरण एक–दूसरे के प्रति भय का माहौल बढ़ाता है और धीरे–धीरे इसके कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से विखंडन सामने आता है। अपराध आधारित कुछ अध्ययन और नीतियों ने डर के इस मसले को उभारने का प्रयास किया है और यह स्पष्ट किया है कि भय का यह विषय शक्ति और शक्तिहीनता से जुड़ा है। यह तथ्य ऐसे महत्वपूर्ण तंत्र (Mechanism) के विकास में सहायक हो सकता है, जो निर्धन और सामाजिक दायरे से बाहर रहने वाले लोगों के जीवन पर दैनिक हिंसा–अपराधों के प्रभाव को कम कर सके और दुनियाभर के शहरों में हिंसा–अपराध के असर को रोक पाए।

7.12 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. शहरों में अपराध–हिंसा नियंत्रण में नगरीय शासन की क्या भूमिका है?
2. नगरों में नगरीय हिंसा का क्या प्रभाव होता है?
3. क्या आप मानते हैं कि नगरीय योजनाएं नगर की अपराध दर (Crime Rate) के कारण प्रभावित होती हैं?

7.13 सहायक अध्ययन (Suggested Readings)

Koonings, K., & Kruijt, D. (2007). Fractured cities: Social exclusion, urban violence and contested spaces in Latin America. London: Zed Books.

Rotker, S., & Goldman, K. (2002). Citizens of fear: Urban violence in Latin America. New Brunswick, NJ: Rutgers University Press.

Violence in the City Understanding and Supporting Community Responses to Urban Violence. 2011. Washington, D.C. : World Bank.

7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf
2. http://rnlkwc.org/pdf/anudhyan/18_04_2016/Urban_Local_Government_In_India.pdf
3. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/38495/5/chapter%201.pdf
4. Rao. P.S. N., 'Good Urban Governance in India – The Road Ahead', Nagarlok, Vol. XXXVI, No. 2, April-June 2004, p. 52.
5. Definition of violence as Moncada Eduardo., 2013, Springer Science+Business media, New York.
6. http://pubs.iied.org/pdfs/10518IIED.pdf

इकाई– 8

निर्धनता, शक्ति, अपराध और बस्तियां
Unit 18: Poverty, Power, Crime and Slums

इकाई की रुपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 नगरीय निर्धनता और बस्तियां

8.1.1 नगरीय शासन की विफलता

8.1.2 निर्धनता की परिभाषा

8.1.3 निर्धनता पैमाने का मापन

8.2 बस्तियां

8.2.1 बस्तियों का अर्थ

8.3 नगरीय गरीबी का सामाजिक विश्लेषण

8.4 नगरीय शक्ति

8.5 नगरीय अपराध

8.6 निष्कर्ष

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई में हम उन मसलों को समझ सकेंगे, जो नगरीय शासन के अवरोध हैं। उदाहरण के लिये, निर्धनता, बस्तियां और अपराध। इसके अलावा हम नगरीय शक्तियों के बारे में भी जान पाएंगे।

8.1 नगरीय निर्धनता और बस्तियां (Urban Poverty and Slums)

बस्तियां और नगरीय निर्धनता नगरों में जनसंख्या दबाव और क्षेत्र–स्थान परिवर्तन का परिणाम मात्र नहीं हैं, न ही ये वैश्वीकरण के वैयक्तिक दबाव का नतीजा हैं। बस्तियों के बसने की एक बड़ी वजह आवास संबंधी नीतियों की नाकामी, नियमों और संसाधन सेवाओं की कमी तथा नगरीय नीतियों और नगरीय शासन की विफलतायें भी होती हैं।

8.1.1 नगरीय शासन की विफलता (Failure of Urban Governance)

निम्न आय वर्ग समूहों के लिये बेहतर आवास संबंधी सुविधाओं और अच्छी जीवनशैली उपलब्ध कराने की राह में जो कारक सबसे बड़ी बाधा बनकर सामने आता है, वह है दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव। इसके चलते ही बस्तियां उभरती हैं। इसमें कोई दोराय नहीं है कि दीर्घकालिक और ढांचागत व्यवस्था को लेकर राजनीतिक इच्छाशक्ति सफलता की कुंजी है, मुख्यतः तब, जबकि स्थानीय स्वामित्व और स्थानीय नेतृत्व इसके लिये तैयार हो और लोगों, हितधारकों की क्षमताओं का भी इस काम में उपयोग किया जा सके। विभिन्न देशों के अनुभवात्मक शोध बस्तियों की संख्या में गिरावट और इनमें जीवनस्तर में सुधार के लिये राजनीतिक इच्छाशक्ति की मजबूती और निरंतरता को बुनियादी और महत्वपूर्ण कारक बताते हैं।

नीतियों की विफलता वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय हर स्तर पर होती है। वैश्विक स्तर पर जिन नीतियों ने राष्ट्रीय शासन को कमजोर किया है, उनमें असंयत वैश्वीकरण प्रक्रिया को लेकर प्रतिकार और केंद्रीय नियंत्रण का अभाव नजर आता है, जिसकी वजह से असमानता और कुछ समुदायों के हाशिये पर जाने का परिणाम सामने आता है। राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों का उदारवाद, क्षेत्रीय विखंडन और विश्लेषणात्मक व सांस्थानिक ढांचा शहरी–ग्रामीण क्षेत्रों के बीच अंतर्क्षेत्रीय सेतु बन पाने में विफल रहा है। यह स्थिति आर्थिक विकास की निरंतरता और अवसरों के समान वितरण में बाधक बनती है। स्थानीय स्तर पर क्षमताओं के आवश्यक उपयोग और प्रबंधन के अभाव से उपजी परिस्थितियों ने बस्तियों में रहने वाले लोगों को गैरकानूनी, असुरक्षित वातावरण के अलावा पर्यावरणीय लिहाज से कमतर बना दिया है।

नगरीय निर्धन लोग अनौपचारिक और अवैध दुनिया में फंसकर रह जाते हैं। वे उन बस्तियों में रहते हैं, जो नक्शे पर नजर नहीं आतीं, जहां कचरा और गंदगी हर ओर पसरी रहती है, करदाता यहां नहीं रहते हैं और जनसुविधाएं भी यहां मुहैया नहीं कराई जातीं। कुल मिलाकर आधिकारिक रूप से इन बस्तियों का कोई अस्तित्व होता ही नहीं है, जबकि वे किसी नगर और शहर की प्रशासकीय सीमाओं पर ही होती हैं। प्रशासनिक देखरेख के अभाव में इन बस्तियों में माफिया और आपराधिक तत्व विकसित होते हैं जो बस्तियों और यहां रहने वाले लोगों पर गैरकानूनी तरीकों से नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर नगरीय परिषदों के कर्मचारी शायद ही कभी इन बस्तियों में प्रवेश करते हैं, उनके नियंत्रण की बात तो दूर है। अवैध रूप से रहने के कारण और पहचान का अभाव होने से इन बस्तियों में रहने वाले अधिकतर लोगों के पास न तो संपत्ति का कोई अधिकार होता है, न ही उनके लिये सुरक्षा की कोई व्यवस्था यहां रहती है। लेकिन अनियमित, अनौपचारिक व्यवस्थाओं के चलते इन लोगों के लिये यहां समानांतर बाजार उपलब्ध रहते हैं।

राजनीतिक इच्छाशक्ति और स्थानीय शासन के अभाव का सर्वाधिक खामियाजा गरीबों को उठाना पड़ता है।

कमजोर नगरीयशासन के कारण असमानता, भ्रष्टाचार और संसाधनों के वितरण में असंतुलन की स्थिति पैदा होती है, जिसमें निर्धन वर्ग या तो सबसे निचले पायदान पर रहता है या मौजूद ही नहीं होता।

8.1.2: निर्धनता की परिभाषा (Defining Poverty)

बस्तियों की तरह गरीबी भी ऐसा पैमाना माना जाता है, जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है। लेकिन वस्तुतः इसकी अवधारणा को परिभाषित कर पाना बेहद कठिन है। नगरीय निर्धनता को सामान्यतः गृहस्वामियों की आय से मापा जाता है। उदाहरण के लिये ऐसे लोग नगरीय निर्धन की श्रेणी में माने जाते हैं, जो बुनियादी जरूरतों तक को भी जुटा नहीं सकते, दूसरे शब्दों में जो प्रतिदिन एक या दो डॉलर से भी कम आय कर पाते हैं। विभिन्न देशों में गरीबी को मापने के लिये कई पैमानों का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन ये भी निर्धनता की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट कर पाने में विफल ही रहे हैं। दरअसल, लोग सिर्फ कम आय के कारण ही निर्धन नहीं होते हैं, बल्कि अस्थायी और जोखिमभरी परिस्थितियों के कारण भी वे कई बार मुश्किल दिनों का सामना करते हैं। उनकी निर्धनता का कारण यह भी हो सकता है कि जिस घर में वे रहते हैं, वहां उनके अलावा कई लोग रहते हैं या फिर वहां बेहद निम्न गुणवत्तापरक परिस्थितियां हैं अथवा सुरक्षा का सर्वथा अभाव है। वे साफ–सुरक्षित पानी

नगरीय निर्धनता के घटक

1. अपर्याप्त आय (इसके चलते भोजन, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं तक जुटाना मुश्किल होता है। अकसर उधार लेने और फिर चुका नहीं पाने के चलते आय और अधिक घट जाती है और जीवन के लिये आवश्यक जरूरतें तक पूरी नहीं हो पातीं)
2. अपर्याप्त और अस्थायी संपत्ति आधार (भौतिक और अभौतिक संसाधन, जिनमें शैक्षिक सुविधाएं और आवास भी शामिल होते हैं)
3. अपर्याप्त आवास (सामान्यतः बेहद घटिया गुणवत्ता, असुरक्षित और बेहद सघन आबादी)
4. अपर्याप्त जनसुविधागत ढांचा (पेयजल पाइपलाइन, शौचालय, नालियां, सड़क–फुटपाथ, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव)
5. बुनियादी सुविधाओं का अभाव (स्कूल, प्रशिक्षण, आपात सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन, संचार, कानून)
6. असुरक्षित वातावरण के चलते आय में गिरावट पर बुनियादी संसाधनों के उपभोग का असमान वितरण, स्वास्थ्य और आवास सुविधाओं की अनुपलब्धता
7. निर्धन वर्गों के अधिकारों की अनदेखी, कानूनी और राजनीतिक संरक्षण का अभाव
8. राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासकीय ढांचे में शक्तिहीनता और आवाज की अनदेखी, पहचान पाने के सीमित अथवा नगण्य अवसर, निजी संसाधनों के विकास के प्रयासों के समर्थन का अभाव, सहायता समूहों, सरकार से सहयोग की बेहद न्यून संभावना

(स्रोतः **Satterhwaite, 2001**)

इस्तेमाल नहीं कर पाते, उनके लिये स्वास्थ्य और स्कूल जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनके लिये सुरक्षात्मक आवरण की कोई व्यवस्था नहीं है और वे न तो सामाजिक नियमों, न ही राजनीतिक सहारे और कानूनी सुरक्षा के दायरे में आते हैं। यहां तक कि उनके लिये आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की भी व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि उनकी आवाज राजनीतिक व्यवस्था में सुनी ही नहीं जाती।

विभिन्न देशों में गरीबी को मापने के लिये कई पैमानों का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन ये भी निर्धनता की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट कर पाने में विफल ही रहे हैं। दरअसल, लोग सिर्फ कम आय के कारण ही निर्धन नहीं होते हैं, बल्कि अस्थायी और जोखिमभरी परिस्थितियों के कारण भी वे कई बार मुश्किल दिनों का सामना करते हैं। उनकी निर्धनता का कारण यह भी हो सकता है कि जिस घर में वे रहते हैं, वहां उनके अलावा कई लोग रहते हैं या फिर वहां बेहद निम्न गुणवत्तापरक परिस्थितियां हैं अथवा सुरक्षा का सर्वथा अभाव है। वे साफ–सुरक्षित पानी इस्तेमाल नहीं कर पाते, उनके लिये स्वास्थ्य

नगरीय निर्धनता के घटक

9. अपर्याप्त आय (इसके चलते भोजन, पानी जैसी बुनियादी सुविधाएं तक जुटाना मुश्किल होता है। अकसर उधार लेने और फिर चुका नहीं पाने के चलते आय और अधिक घट जाती है और जीवन के लिये आवश्यक जरूरतें तक पूरी नहीं हो पातीं)
10. अपर्याप्त और अस्थायी संपत्ति आधार (भौतिक और अभौतिक संसाधन, जिनमें शैक्षिक सुविधाएं और आवास भी शामिल होते हैं)
11. अपर्याप्त आवास (सामान्यतः बेहद घटिया गुणवत्ता, असुरक्षित और बेहद सघन आबादी)
12. अपर्याप्त जनसुविधागत ढांचा (पेयजल पाइपलाइन, शौचालय, नालियां, सड़क–फुटपाथ, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव)
13. बुनियादी सुविधाओं का अभाव (स्कूल, प्रशिक्षण, आपात सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन, संचार, कानून)
14. असुरक्षित वातावरण के चलते आय में गिरावट पर बुनियादी संसाधनों के उपभोग का असमान वितरण, स्वास्थ्य और आवास सुविधाओं की अनुपलब्धता
15. निर्धन वर्गों के अधिकारों की अनदेखी, कानूनी और राजनीतिक संरक्षण का अभाव
16. राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासकीय ढांचे में शक्तिहीनता और आवाज की अनदेखी, पहचान पाने के सीमित अथवा नगण्य अवसर, निजी संसाधनों के विकास के प्रयासों के समर्थन का अभाव, सहायता समूहों, सरकार से सहयोग की बेहद न्यून संभावना

(स्रोतः Satterhwaite, 2001)

और स्कूल जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनके लिये सुरक्षात्मक आवरण की कोई व्यवस्था नहीं है और वे न तो सामाजिक नियमों, न ही राजनीतिक सहारे और कानूनी सुरक्षा के दायरे में आते हैं। यहां तक कि उनके लिये आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की भी व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि उनकी आवाज राजनीतिक व्यवस्था में सुनी ही नहीं जाती।

8.1.3 निर्धनता के पैमाने का मापन (Measurement of Poverty Incidence)

अधिकतर देशों ने निर्धनता को मापने के लिये कुछ पैमाने तय किये हैं। सामान्यतः ये पैमाने आय पर आधारित होते हैं, जिन्हें निम्नवत समझा जा सकता हैः

निश्चित निर्धनता (Absolute Poverty): इस दायरे में वे लोग आते हैं जो दैनिक जीवन के लिये आवश्यक संसाधन भी जुटा पाने में अक्षम हैं। इसमें न्यूनतम पोषण के लिये आवश्यक भोजन और पानी तो शामिल हैं ही, अन्य आवश्यकताओं जैसे कपड़े, आवास, परिवहन, रोजगार, शिक्षा और अन्य बुनियादी जरूरतों को भी शामिल किया जाता है।

संबद्ध निर्धनता (Relative Poverty): आय संबंधी मानक अकसर नगरीय निर्धनता के कई पहलुओं की अनदेखी करते हैं। इसका कारण यह है कि वे नगरीय जीवन के लिये आवश्यक अन्य खर्चों जैसे आवास, परिवहन, स्वयं के लिये भोजन उत्पादन करने के अवसरों के अभाव को पैमाना नहीं मानते। वे आवासों के भीतर की निर्धनता को भी इंगित नहीं करते, जहां घर के सदस्यों के बीच शक्ति का असमान वितरण रहता है, जिसके चलते महिलाओं और बच्चों के लिये निर्धनता अथवा अभावग्रस्त जीवन जीना मजबूरी बन जाता है। शोध बताते हैं कि जिन घरों में महिलाओं को निर्णय की क्षमता हासिल है, वहां घर के सदस्यों के बीच आर्थिक वितरण की स्थिति बेहतर पायी गयी है। घर के सदस्यों की आय का पैमाना उन परिस्थितियों को भी सामने नहीं लाता, जिनके जरिये आय होती है। वे राष्ट्रीय संदर्भ में भी निर्धनता के बाबत स्थानीय वितरण को स्पष्ट नहीं करते हैं। फिर भी विश्व बैंक अध्ययन के ताजा रिकॉर्ड रुझानों पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं और सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों (Millenium Development Goals) को हासिल करने के लिये बहुत उपयोगी हैं।

8.2 बस्तियां (Slums)

बस्तियां और निर्धनता का न सिर्फ गहरा संबंध है, बल्कि ये दोनों एक दूसरे के लिये कारक भी बनती हैं। हालांकि, इन दोनों का यह संबंध हमेशा प्रत्यक्ष और साधारण नहीं रहता है। बस्तियों में रहने वाली आबादी सजातीय (Homogeneous) नहीं होती। कई बार ठीकठाक आय पाने वाले लोग भी विभिन्न कारणों से बस्तियों के भीतर या बस्तियों के किनारे पर रहते हैं। अधिकतर बस्तीवासी अनौपचारिक आर्थिक संसाधनों (Informal Economy) से जुड़े होते हैं, इसके चलते कई बार उनकी आय औपचारिक नौकरीपेशा (Formal Employees) से भी अधिक होती है। दूसरी ओर, कई नगरों के बाहरी क्षेत्रों में निर्धन लोग बस्तियों में रहते हैं। बस्तियां किसी शहर का वह इलाका हैं, जहां निर्धन

लोगों को बेहद सघन क्षेत्र में और बेहद खराब परिस्थितियों में रहते देखे जा सकते हैं। हालांकि, शहर के सबसे बेहतर माने जाने वाले क्षेत्रों में भी निम्न आय वर्ग के लोग पाये जा सकते हैं।

बस्तियों के आसपास विभिन्न सामाजिक–आर्थिक चुनौतियां सामने आती हैं। इन क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक रूप से पृथक्कीकरण, उच्च जनसंख्या घनत्व, विघटित परिवारों की बड़ी संख्या, बेरोजगारी जैसी परेशानियां नजर आती हैं। ये सभी विशेषताएं अपराध और हिंसा को बढ़ावा देने की वजह बनती हैं और इसीलिये माना जाता है कि सघन नगरीय क्षेत्रों में हिंसा का 'टाइम बम' बना रहता है।

बस्तियों की बदहाली की वजह निर्धनता और आवासीय सुविधाओं को लेकर असमान व्यवस्था है। आवासीय सुविधाओं की अव्यवस्था का कारण कई बार बस्तियों में रहने वाले लोगों के रहन–सहन के कारण नियमों को लागू कर पाने में बनने वाला असमंजस होता है। बस्तियों में जीवनशैली, निर्धनता और वहां रहने वाले निर्धन लोगों का जीवन प्रबंधन सम्मिलित होता है। इससे कारण और प्रभाव संबंधों (Cause and Effect Relationship) में भ्रांतियां और गड़बड़ियां उभरती हैं। इस सबके चलते बस्तियों की व्यवस्था में सुधार के कार्यक्रमों और नीतियों को ठीक से लागू कर पाने में दिक्कत आती है जो अंतिम रूप से निर्धनता को दूर करने के मकसद में बाधा बनती है। दूसरी ओर, गैर आवासीय निर्धनता को दूर करने के कार्यक्रमों की बात करें तो यहां माना जाता है कि इन नीतियों से आवासीय सुविधाओं, ढांचागत व्यवस्थाओं और सेवाओं को प्रदान करने की प्रक्रिया में सुधार आ सकता है। लेकिन यह प्रक्रिया तब तक बेहद धीमी अथवा अस्तित्वहीन रहने की आशंका रहती है, जब तक बस्तीवासियों की आय में निरंतर सुधार के प्रयास नहीं किये जाते। यद्यपि दुनियाभर के नगरीय क्षेत्रों में कुछ दशकों से निर्धनता का स्तर बढ़ा है और निर्धनों में भी निर्धनतम श्रेणियां भी बढ़ी हैं, फिर भी नगरीय निर्धन ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन लोगों के मुकाबले अपनी सहायता कर पाने में सक्षम नजर आते हैं। वस्तुतः आप्रवासी (Immigrant) नगरीय निर्धन आर्थिक अवसरों की उपलब्धता के आधार पर गतिशील बने रहते हैं। नगरीय क्षेत्रों में अनौपचारिक आर्थिकी का उभार और व्यवस्थाओं के बिखरे हुए वितरण से इन लोगों के लिये कई नये अवसर सामने आते हैं। कई नगरों में नगरीय जनसंख्या के लिये 60 प्रतिशत तक रोजगार की उपलब्धता अनौपचारिक क्षेत्रों में रहती है और ये क्षेत्र नागरिकों के लिए वस्तुओं व सेवाओं को प्रदान करने के लिहाज से बड़ी भूमिका निभाते हैं।

यह अवधारणा मुश्किल है कि बस्तियों में रहने वाले सभी लोगों की जरूरतें और मांग एकसमान हों। निर्धनता के विभिन्न स्तरों के हिसाब से संसाधनों को इस तरह वितरित करने की जरूरत महसूस होती है कि वे सर्वाधिक आवश्यकता वाले समूह तक पहले पहुंचें। महिलाएं (विशेषतः विधवा), बच्चे, बेरोजगार युवा और शारीरिक रूप से अक्षम लोग सबसे अधिक निर्धनता की चपेट में नजर आते हैं। बस्तियों और अनौपचारिक नगरीय व्यवस्थाओं में ये वर्ग पर्यावरणीय निम्न मानकों और सेवा–सुविधाओं के असमान वितरण से जूझते हैं। हालांकि, नगरीय क्षेत्रों –विशेषकर बस्तियों– में महिलाओं पर निर्भरता वाले परिवार बढ़े हैं। अफ्रीका के नगरीय क्षेत्रों में कुल परिवारों में ऐसे परिवारों की संख्या 30 प्रतिशत तक है। महिला निर्भरता वाले परिवारों में आय के साधनों के अवसर पुरुषों पर निर्भर परिवारों के मुकाबले

काफी कम देखी जाती है। इसके चलते ऐसे परिवार निर्धन रहते हैं। सामान्यतः महिलाओं को बेहतर शिक्षा के अवसर नहीं मिल पाना इसकी बड़ी वजह है। इसके कारण महिलाओं को जहां बच्चों की देखभाल का जिम्मा संभालना होता है, वहीं उनके काम के घंटे भी कहीं अधिक होते हैं। दूसरी ओर, उनके लिये पुरुषों के मुकाबले पर्याप्त पोषणयुक्त भोजन की अनुपलब्धता और गतिशीलता का भी अभाव रहता है। निम्न आय साधनों के चलते महिलाओं पर निर्भर परिवारों के लिये बेहद सीमित आवास सुविधा ही उपलब्ध होती है। कई बार निम्न सामाजिक और कानूनी स्तर, पारंपरिक और धार्मिक कारण भी उनके आवास चयन और भूस्वामित्व में बाधा बनते हैं। इसे निर्धनत का स्त्रीकरण (Feminization of Poverty) माना जाता है।

नगरीय गरीबी का तात्पर्य नगरीय क्षेत्रों में निर्धन लोगों के अस्तित्व के लिये किया जाने वाले संघर्ष से है। इसकी मुख्य वजहें अनौपचारिक आवास, आय संसाधन तो हैं ही, सामाजिक–वित्तीय और बाजार के लिहाज से नगरीय गरीबों की दुर्दशा भी है।

8.2.1 बस्तियों का अर्थ (Meaning of Slums)

साधारण शब्दों में बस्तियां नगरीय क्षेत्रों का सर्वाधिक आबादी वाला क्षेत्र हैं, जहां आवास की निम्न सुविधाएं उपलब्ध हों और जहां मलिनता (Squalor) हो। बस्ती की यह परिभाषा इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करती है। यानी बस्तियों में सघन जनसंख्या ढांचागत विकास, आवास और जनसेवाओं के लिहाज से निम्न मानकों पर रहती है, जबकि इन क्षेत्रों में साफ–सफाई की भी कोई व्यवस्था नहीं होती। बस्तियों में कई तरह की अनौपचारिक व्यवस्थाएं पनपती हैं जो अवैध वर्गीकरण और सार्वजनिक जमीनों पर कब्जे कर गलत तरीके से निर्माण किये जाने के रूप में सामने आती हैं। इनमें झोपड़ियों से लेकर कई बार पक्के निर्माण ढांचे भी रहते हैं, जबकि पानी–बिजली, सफाई जैसी सुविधाएं और ढांचागत व्यवस्थाएं सीमित होती हैं। बस्तियों को दो तरह से वर्गीकृत कर सकते हैं:

बस्तियों की विशेषताएं
1. साफ–सुरक्षित पानी का असमान वितरण। 2. सफाई व्यवस्था और अन्य बुनियादी सुविधाओं तक असमान पहुंच। 3. घरों के कमजोर ढांचे। 4. सघन आबादी। 5. असुरक्षित आवास। 6.अस्वास्थ्यकर जीवनशैली और खतरनाक स्थानों पर अवस्थापना

1. **आशावादी बस्तियां (Slums of Hope)**: इन बस्तियों में विकासवादी व्यवस्थाएं नजर आती हैं। यहां नये स्वनिर्मित भवन दिखाई देते हैं, हालांकि इनमें से अधिकतर अवैध तरीके से सार्वजनिक जमीनों पर कब्जे कर ही बनाए गए होते हैं। लेकिन यहां विकास, चकबंदी और अन्य सुधार की प्रक्रियाओं की संभावना रहती है।
2. **निराशावादी बस्तियां (Slums of Despair)**: इन बस्तियों में पर्यावरणीय परिस्थितियों और घरेलू सेवाओं में कमी के चलते लगातार सुविधाओं और व्यवस्थाओं की गिरावट देखी जाती है।

8.3 नगरीय गरीबी का सामाजिक विश्लेषण (Sociological Perspective of Urban Poverty)

एक सिद्धांत में माना जाता है कि नगरीय क्षेत्रों में लंबे समय तक रोजगार के बेहतर अवसर और कल्याणकारी सेवाओं–सुविधाओं की पर्याप्तता के बावजूद पृथक्कीकरण की प्रक्रिया लगातार बनी रहती है और हस्तांतरित होती रहती है। इस सिद्धांत के अनुसार इसकी वजह उस सामाजिक अव्यवस्था का चक्र है जो एक से दूसरी पीढ़ी तक चलता रहता है। कम वेतन, कमजोर आवासीय सुविधाएं, रोजगार का अभाव जैसे महत्वपूर्ण कारक तो साफ नजर आते हैं, लेकिन सीधे तौर पर नजर नहीं आने वाले घरेलू माहौल और बच्चों की परवरिश के तरीके जैसे सामाजिक पहलू भी इसकी वजह होते हैं।

निर्धनता की संस्कृति दरअसल समाज में हाशिये पर रहने के कारण संबंधित लोगों की प्रतिक्रिया अथवा अपनी स्थिति को स्वीकार कर लेने से उभरती है। इस संस्कृति में जहां संघर्ष के भाव नजर आते हैं, वहीं असहाय स्थिति, विकास से पृथक्कीकरण और पूंजीवादी व्यवस्था में सफलता हासिल नहीं कर पाने का अहसास भी साफ दिखता है। संक्षेप में कहें तो इस सबसे अवसरों के अभाव और कुछ कर पाने की आकांक्षाओं में कमी का दुष्चक्र उभरता है। इस तरह यह पहलू भी सामने आता है कि क्या संस्कृति और सामाजिक स्थिति निर्धनता को बढ़ावा देने के अन्य कारणों से अधिक प्रभावी होती हैं। इसकी वजह यह भी है कि पश्चिमी नगरों में निर्धन वर्ग के सांस्कृतिक प्रतिमान समाज के अन्य वर्गों से बिल्कुल अलग देखे जाते हैं।

निष्कर्षः चिंताओं और परिणामों के सघन जाल से यदि एकल निष्कर्ष निकालना हो, तो वह यह है कि जिन नगरों और देशों में बस्तियों की समस्याओं को समझा गया है, उन्होंने इन दिक्कतों के निस्तारण के लिये सामाजिक आम सहमति बनाने का प्रयास किया है। इसके साथ ही निरंतर चलने वाली नीतियों को लेकर स्पष्टता से भी यह साफ होता है कि समस्याओं का समाधान हो सकता है और यह भी कि बस्तियों और निर्धनता से प्रभावित हितधारकों के स्वयं के स्तर पर भी इस प्रक्रिया को आंशिक रूप से संपन्न किया जा सकता है।

8.4 नगरीय शक्ति (Urban Power)

नगरीय शक्तियां किसके पास होती हैं? इस सवाल का अलग–अलग जवाब मिलता है। सी. राइट मिल्स (C. Wright Mills) बताते हैं कि अधिकतर नगरीय (राष्ट्रीय) शक्तियां शक्तिशाली अभिजात्य वर्ग, व्यावसायिक गठजोड़, प्रभावी परिवारों और राजनीनेताओं के हाथों में रहती हैं। वहीं, नेल्सन पॉल्सबी (Nelson Polsby) और रॉबर्ट डेल (Robert Dahl) बहुलवादी व्याख्या (Pluralistic Interpretation) देते हैं। अमेरिका के तटवर्ती नगर न्यू हेवन (New Haven) में शक्तियों की व्यवस्था पर उनका अध्ययन विभिन्न समूहों तक विस्तारित हुआ। लेकिन बेकरॅक (Bachrach), बराट्ज (Baratz) और मार्क्सवादी विश्लेषक डेविड गॉर्डन (David Gordon) ने इन दोनों सिद्धांतों को मात्र ढांचागत बताते हुए आलोचना की है। वे तर्क देते हैं कि किसी नगर की निर्णय निर्धारण क्षमता और

नीतियों पर उस नगर के अभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व रहता है और वे अपने निहित लाभ, रुचियों के हिसाब से इनमें आवश्यक बदलाव करने, अपने अनुसार मोड़ने की क्षमता रखते हैं।

नगरीय शक्तियों के मूलतः दो प्रकार माने जाते हैं, एकाधिपत्य (Monolithic) और बहुलवादी (Pluralistic)। हंटर (1953) और डेल (1961) की खोज के बाद इन दोनों प्रकारों की विस्तृत श्रृंखला दुनियाभर के शहरों में देखी–पहचानी गयी है। क्षेत्रीय शहर (Regional City) के तौर पर अटलांटा (Atlanta) के अध्ययन के दौरान हंटर (Hunter) ने पाया कि वहां लगभग सभी निर्णय उन लोगों के द्वारा लिये जाते थे, जो शक्ति के अनुक्रम में सबसे उच्च पायदान पर रहते थे और उनकी यह स्थिति लगभग स्थायी बनी रहती थी। ये लोग, जो मुख्यतः व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र से आते थे जो गठजोड़ की तरह काम करते थे और कृपापात्र समूहों का चयन अपने लाभ के लिये किया करते थे। योजनाएं प्रारंभ तो होती थीं, लेकिन इन लोगों की सहमति के बिना उसका पूरा होना संभव नहीं था या होता भी तो उसके परिणाम नगण्य ही रहते।

दूसरी ओर, डेल ने न्यू हेवन, कनेक्टिकट में निर्णय क्षमता के अध्ययन के आधार पर शक्तियों के बहुलवादी मॉडल को स्पष्ट करते हुए बताया कि शक्ति की प्रवृत्ति हस्तांतरण की भी है। समय, परिस्थितियों और मुद्दों के आधार पर विभिन्न अभिजात्य वर्गों के बीच उनके प्रभुत्व के आधार पर शक्तियां बंट जाती हैं। उदाहरण के लिये यदि सार्वजनिक आवासों की योजना हो तो इससे लाभान्वित होने वाले व्यावसायिक–राजनीतिक वर्ग इस पर नियंत्रण रखते हैं, इसी तरह अगर योजना में नये स्वास्थ्य केंद्रों का निर्माण भी शामिल हो तो इस व्यवस्था से जुड़े व्यावसायिक–राजनीतिक वर्ग भी योजना में शामिल होकर उसके परिणामों से लाभ लेने की कोशिश करते हैं। इस तरह डेल का मॉडल स्पष्ट करता है कि हंटर ने अटलांटा में जिस वर्ग का अध्ययन किया था, दरअसल वह शक्तियों के वितरण के समूह (Cluster) का एक हिस्सा ही था। डेल तर्क देते हैं कि चूंकि समग्र दृष्टि से देखें तो व्यवस्था लोकतांत्रिक है जो राजनीतिक ढांचे पर टिकी हुई और जहां अभिजात्य वर्गों के बीच आमजन का समर्थन–निष्ठा पाने के लिये स्पर्धा बनी रहती है, वहां राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखना आवश्यक होता है। इससे यह होता है कि जब मौजूदा शक्तिसंपन्न व्यवस्था की नीतियों और गतिविधियों में मतदाताओं की उम्मीदों के विपरीत कमी आती है तो लोग अपनी आवाज उठाने को प्रेरित होते हैं। परिणामस्वरूप एक नया शक्ति समूह उभरकर सामने आता है। बहुलवादी सिद्धांत के अनुसार, इस पूरी प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी नगर में लंबे समय तक बेहतर सेवाओं–सुविधाओं और उत्पादन को बनाये रखने को विभिन्न समूहों के बीच संसाधनों का संतोषजनक वितरण किया जाता है। दूसरी ओर, एकाधिपत्यवादी सिद्धांत में यह माना जा सकता है कि वहां शक्तियों का ढांचा अभिजात्य वर्ग के ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है।

हालिया शोधों में यह सुझाव भी सामने आया है कि नगरीय राजनीति को न तो एकाधिपत्यवादी सिद्धांत के नजरिये से देखा जाना चाहिये और न ही बहुलवादी सिद्धांत के दृष्टिकोण से। इसके बजाय इसे शासनप्रणाली में क्रमागत उन्नति के तौर पर देखा जाना चाहिये। शासनप्रणाली सिद्धांत स्पष्ट करता है कि नगरों में किस तरह अलग–अलग लक्ष्यसमूह साथ आते हैं और उद्देश्य को पूर्ण करते हैं। सामान्यतः ये समूह विकासपरक होते हैं जो राजनीतिक प्रक्रिया के जरिये एक–दूसरे से जुड़े रहकर

समस्याओं के समाधान की दिशा में प्रयास करते हैं। इस सिद्धांत का महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि शक्ति स्वतः हस्तांतरित नहीं होती, बल्कि इसे हासिल करने के लिये सक्रिय रूप से प्रतिभाग करना होता है। उदाहरण के लिये किसी नगर के आर्थिक जीर्णोद्धार और महानगरीय परिवर्तनों के लिये बनायी जाने वाली योजनाओं और नीतियों को पूरी तरह लागू करने और इनसे अपेक्षित परिणाम हासिल करने के लिये संबंधित नगर के अधिकारियों को मदद की जरूरत पड़ती है। सरकारी अधिकारियों और निजी समूहों के बीच एक अलग शासनप्रणाली विकसित होती है, जिसके चलते शासन ढीले–ढाले रवैये व कार्यशैली वाले तथा कम परिणामकारी औपचारिक अधिकरणों पर अधिक निर्भर नहीं रह जाता। उत्तर औद्योगिक नगरों में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप नवउदारवादी, युवा उद्यमी, जनवादी, पर्यावरणवादी जैसे नये सामाजिक–राजनीतिक समूह उभरकर सामने आये हैं और इन नगरों के पारंपरिक, जाति आधारित वर्गों में शामिल हो चुके हैं। इसके चलते इन नगरों की शासनप्रणाली और अधिक मिश्रित और गतिशील हो गयी है। इसके अलावा आर्थिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया ने आर्थिक विकास निवेश को लेकर भी स्पर्धा को बढ़ाया है, जिससे नगरीय निकायों में नयी गतिशीलता और और इनमें राजनीतिक द्वंद्व मौन हो गये हैं। इससे नगरीय राजनीति को भी विस्तृत नजरिये से देखने की जरूरत बन गयी है।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में शक्तियां विकेन्द्रीकृत हैं। 74वें संविधान संशोधन में स्थानीय निकायों की व्यवस्था दी गयी है जो नगरीय क्षेत्रों में लोगों के लिये जमीनी स्तर पर काम

माइकल फॉकल्ट और शक्ति (Michael Foucalt and Power): फॉकल्ट शक्ति को एक ऐसे महत्वपूर्ण कारक के तौर पर देखते हैं जो हर लोगों के दैनंदिन जीवन में साधारण जरूरतों को पूर्ण करने में मदद करती है। वह मानते हैं कि शक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कुछ लोगों के ही पास हो और दूसरों के पास नहीं। लोगों के शक्तिशाली होने की वजह व्यक्तिगत गुण अथवा पद नहीं हैं, बल्कि उनकी क्षमता और शक्ति के उपयोग की दूसरों द्वारा की जाने वाली पहचान है। वह मानते हैं कि शक्ति कोई वस्तु नहीं, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका निरंतर अभ्यास किया जाना जरूरी होता है। फॉकल्ट तर्क देते हैं कि शक्ति तनाव की स्थिति में संबंधों का नेटवर्क है। इस प्रक्रिया को समझने के लिये उन्होंने सूक्ष्म शक्तियां (Micro Powers) शब्द दिया है। इसके अलावा उन्होंने जेलनुमा नगर (Carceral Cities) शब्द का भी प्रयोग किया है, जो बताता है कि नगरीय क्षेत्रों में शक्ति विकेन्द्रीकृत रहती है और यहां लोगों का नियंत्रण सूक्ष्मशक्तियों के जरिये किया जाता है। इस तरह लोग स्वयं के प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में काल्पनिक तरीकों से रहते हैं। फॉकल्ट ने पेनाप्टिकॉन (Panapticon) नामक रूपक (Metaphor) का भी इस्तेमाल अपने सिद्धांत में किया है जो अनुशासित समाज की प्रक्रिया को समझाता है। पेनाप्टिकॉन दरअसल एक मॉडल जेल की परिकल्पना थी, जिसे 19वीं सदी के विचारक जेरेमी बेंथम ने ईजाद किया था। इस जेल में लोगों को इस तरह रखा जा सकता था कि उन्हें एक ही केंद्रीय बिंदु से हर वक्त नजर में रखा जा सके। हालांकि, जेरेमी का यह डिजाइन कभी सीधे तौर पर इस्तेमाल नहीं किया गया, फॉकल्ट ने इस शब्द का प्रयोग उन निगरानी उपयोगों के लिये रूपक के तौर पर किया, जो नगरों के सामयिक स्थानों पर इस्तेमाल किये जाते हैं। उदाहरण के लिये शॉपिंग मॉलों में सीसीटीवी और सुरक्षा गार्डों का इस्तेमाल निगरानी रखने के लिये किया जाता है।

कुछ विद्वानों ने तर्क दिया है कि फॉकल्ट का शक्ति संबंधी सिद्धांत नितांत अप्रतिरोधी है और यह लोगों में उन्हें बांधने वाली ताकतों के विरोध की क्षमता के बारे में बहुत कम बताता है। उदाहरण के लिये, वारेन (1996) ने उन तरीकों को स्पष्ट किया, जिनसे डिज्नी थीम पार्क, विभिन्न शॉपिंग मॉल और इस तरह के अन्य स्थानों में लगी निगरानी और नियंत्रण प्रणाली को लोगों ने ध्वस्त कर दिया या उनसे बचने के तरीके तलाश लिये। डिज्नी पार्क में नियंत्रण और निगरानी के मानकों में वर्दीधारी सुरक्षा गार्ड भी रहते हैं, जबकि कई सुरक्षा गार्ड सैलानियों के बीच उनकी ही वेशभूषा में बने रहते हैं, जो आगंतुकों के साथ–साथ यहां तैनात रहने वाले कर्मचारियों पर भी निगाह रखते हैं। फिर भी, इस तरह की निगरानी व्यवस्था कुछ ऐसे आगंतुकों या कर्मचारियों को ड्रग्स और शराब जैसे मादक द्रव्यों को ले जाने से पूरी तरह रोकने में नाकाम रहती है।

जेलनुमा शहर (Carceral Cities) माइकल फॉकल्ट का दिया शब्द है, जो ऐसे शहर को सामने रखता है, जहां शक्तियां विकेन्द्रीकृत होती हैं। इन नगरों में लोग स्वास्थ्य, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि गतिविधियों के लिये परिवार, अस्पताल, स्कूल, जेल जैसे संस्थानों की मदद से नियंत्रित किये जाते हैं। चूंकि विभिन्न गतिविधियों के लिये संबंधित संस्थानों की मौजूदगी की बाध्यता रहती है, लिहाजा यहां लोग एक तरह से सांस्थानिक बंदी बने रहते हैं। (लैटिन शब्द Carcer का अर्थ जेल होता है, और इससे अंग्रेजी शब्द Incarcerate बना है, जिसका तात्पर्य बंदी अथवा बंधन में रखना है)

शक्ति का प्रदर्शन किसी क्षेत्रविशेष पर विशेष समूहों के एकाधिकार और अन्य कमजोर समूहों के उस स्थान से बाहर रहने से परिलक्षित होता है। हालांकि, शक्ति के इन संबंधों को सामान्यतः दैनिक जीवन प्रक्रिया का स्वाभाविक हिस्सा माना जाता है। इसकी वजह से सांस्कृतिक साम्राज्यवाद उभरता है, जहां आधिपत्यवादी शक्तियां अदृश्य रहकर नियंत्रण रखती हैं, जबकि कम शक्तिशाली समूह बाहरी के तौर पर देखे जाते हैं। इस तरह की व्यवस्था पारंपरिक पहचानों में आमतौर पर देखी जाती है।

अपराध शहरों का कोई विशेष मूल घटक नहीं है, बल्कि यह नगरीय सामाजिक जीवन, अलगाववाद और मूल्यों की कमी की वजह से उपजने वाली स्थिति है। अपराध पीड़ितों पर होने वाले इसके प्रभाव को शहरों में रहने के एक प्रमुख नुकसान के तौर पर देखा जाता है।

8.5 नगरीय हिंसा–अपराध (Urban Crime)

परिचय (Introduction): नगर राजनीतिक शक्तियों, आर्थिक अन्वेषणों और सांस्कृतिक गतिविधियों का चौराहा होते हैं। ये लोगों को आकर्षित करते हैं, क्योंकि यहां रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन की बेहतर सुविधाएं और अवसर उपलब्ध होते हैं। यह माना जाता है कि नगर समृद्धि और विविधताओं के

अगुवा होते हैं, लेकिन दूसरा पहलू यह है कि नगरों में प्रदूषण, आबादी, गरीबी, सामाजिक पृथक्कीकरण, हिंसा–अपराध और गंदगी जैसी समस्याएं भी लगातार बढ़ी हैं।

नगरीय हिंसा के कारक (Factors of Urban Crime): नगरीकरण की अंधाधुंध दौड़ ने संसाधनों और सुविधाओं को भारी दबाव की स्थिति में ला दिया है। अधिकतर विकासशील देशों में नगरीय निर्धन लोग बेहद असुरक्षित वातावरण और निम्न आय पर जीवन जीते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर आने वाले लोगों के सामने बस्तियों में रहने और निर्धनता का सामना करने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। आज के दौर में शहरीकरण से बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिये असुरक्षित गलियों, पानी, भोजन, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी संसाधनों तक पहुंच का अभाव और खतरों की बढ़ोतरी भी हो रही है। संयुक्त राष्ट्र के मानव संसाधन विकास कार्यक्रम के अनुसार दुनियाभर में एक अरब के करीब लोग बस्तियों, असुरक्षित आवासों में निर्धनता और अनौपचारिक व्यवस्था में रहते हैं। यही नहीं, प्राकृतिक आपदाओं के पीड़ितों का आंकड़ा भी बताता है कि नगरीय क्षेत्रों में उपेक्षित रहने वाली आबादी ही इनसे अधिक प्रभावित होती है और मानव सहायता संगठनों के लिये कई बार उनकी पर्याप्त मदद कर पाना भी संभव नहीं हो पाता। प्राकृतिक आपदाओं के साथ नगरीय हिंसा उपेक्षित रहने वाले लोगों के लिये बेहद गंभीर चुनौतियां पेश करती हैं। ये समस्याएं तब और बढ़ जाती हैं, जब उपेक्षा, निर्धनता, आर्थिक असमानताएं, बेरोजगारी, सामाजिक पृथक्कीकरण में किसी तरह की कोई कमी नहीं आती। दुनिया में शहरीकरण के बढ़ावे के साथ, कई नगरों में हिंसा और अपराध का स्तर अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा है, जिसने लोगों के दैनिक जीवन को कुछ इस तरह का बना दिया है मानो वे युद्धक्षेत्र में रह रहे हों।

लूटमार से लेकर संगठित अपराध तक अपराधों की श्रृंखला नगरों में भययुक्त वातावरण के स्रोत हैं। आमतौर पर अपराध आर्थिक असमानता, निर्धनता, सामाजिक असमानता, मादक पदार्थों की तस्करी जैसी परिस्थितियों से प्रारंभ होता है। इसके अलावा राजनीतिक और आर्थिक अस्थिरता, हथियारों के प्रसार और आपराधिक गिरोह भी इसकी वजह होते हैं। इसके अलावा लक्ष्य आधारित समूह सीधे तौर पर हिंसा–अपराध के कारण नहीं होते, लेकिन वे भी कई बार हिंसा में बढ़ोतरी में मददगार बन जाते हैं। नगरीय क्षेत्रों में पानी, सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी सार्वजनिक और सामाजिक सेवाओं की कमी लोगों के दैनिक जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं और स्थानीय संगठित गिरोहों अथवा राज्य भी इन पर दमनात्मक नियंत्रण रखने का प्रयास करता है। इस तरह के क्षेत्र सामाजिक, मानवाधिकार संगठनों की पहुंच से भी दूर रहते हैं, जिससे इनके स्तर पर भी वहां रहने वाले लोगों को मदद नहीं मिलती, और अगर मिलती भी है तो बेहद कम पैमाने पर। आपराधिक गतिविधियों के कारण शहरों की प्रकृति में भी बदलाव आया है, जिसके चलते सामाजिक समूहों में अलगाव, समुदायों के खुलेपन में कमी आती है जो लोगों को चहारदीवारी के भीतर रहने पर मजबूर करती है। ऐसे समुदायों में युवाओं का अपराधों की ओर झुकाव अधिक देखा गया है, जहां आपराधिक वस्तुएं सुलभ हैं, जिनमें मादक पदार्थ सबसे अहम हैं। शराब और मादक पदार्थों का इस्तेमाल हिंसा–अपराध से प्रत्यक्ष जुड़ा रहता है और यह अपसंस्कृति को भी बढ़ावा देता है।

अपराध का सामाजिक विश्लेषण (Sociological Perspective of Crime): हिंसा के लिहाज से नगरीय क्षेत्र ग्रामीण अथवा उपनगरीय क्षेत्रों के मुकाबले अधिक असुरक्षित माने जाते हैं। वे कौन से

कारण हैं जो किसी क्षेत्र को खतरनाक बना देते हैं, इसका जवाब कुछ शोध में तलाशने का प्रयास किया गया है। वर्थ (Wirth-1938), शॉ (Shaw-1942), सिमेल (Simmel-1951) और मॅके (McKay-1969) ने अपने अध्ययन में उन पहलुओं को उभारा है जो नगरीय परिवेश में सामाजिक असंगठन और व्यक्तिगत अलगाव की वजह बनते हैं। ये दोनों परिस्थितियां व्यक्ति अथवा समुदाय के नकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देती हैं जिनके कारण अपराध और नगरीय क्षेत्रों में खतरा बढ़ सकता है। इस तरह के व्यवहार की वजह विजातीयता, निम्न आर्थिक स्थिति, घुमंतू या खानाबदोश जीवन, पारिवारिक विघटन हो सकती है। अपने निबंध 'Urbanism as a Way of Life' में लुइस वर्थ बताते हैं कि नगरीय समाज में प्राथमिक समूह संबंध (परिवार और रिश्तेदार) द्वितीयक समूह संबंध (पड़ोसी, सहकर्मी) में बदल जाता है। द्वितीयक समूह संबंध अस्थायी, सतही और अवैयक्तिक संवाद आधारित होता है।

परिणामस्वरूप नगरीय जीवन यहां रहने वाले लोगों को गुमनामी की ओर धकेलता है, जिससे उनकी परस्पर दूरियां बढ़ती जाती हैं। शहरों में रहने वाले लोग अकसर उन लोगों को जानते तक नहीं हैं, जिनसे वे लगभग हर रोज संवाद स्थापित करते हैं। मसलन, दुकानदार, सहकर्मी, सहयात्री और यहां तक कि पड़ोसी भी। वर्थ मानते हैं कि द्वितीयक समूह संबंध पारिवारिक विघटन, शराब के सेवन, अपराध और नगरीय जीवन के अन्य नकारात्मक पहलुओं को बढ़ावा देते हैं। सैमसन और ग्रोव्स (1989) ने शॉ और मॅके की अवधारणा के आधार पर इंग्लैंड और वेल्स के आंकड़ों का अध्ययन किया और पाया कि सामाजिक असंगठन का सिद्धांत नगरीय क्षेत्रों में किशोरवय के अपराध की ओर झुकाव को बेहतर तरीके से प्रस्तुत करता है। अमेरिका को छोड़कर अन्य कई देशों के अध्ययन से यह भी साफ हुआ कि बाल अपराध की बढ़ती घटनाएं किसी देश विशेष तक ही सीमित नहीं हैं। इनके अलावा कई अन्य विद्वानों ने भी शॉ और मॅके के अपराध व सामाजिक असंगठन के संबंधों के सिद्धांत का परीक्षण किया है।

8.6 निष्कर्ष (Conclusion)

नगरीय शासन के लिये नगरीय गरीबी निश्चित रूप से बड़ी चुनौती है और यह शहरीकरण प्रक्रिया की बड़ी बाधा भी है। बस्तियों और निर्धनता के संबंधों की वजह से शहरों में कई समस्याएं जन्म लेती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग शहरों में आते हैं, बस्तियों में रहते हैं और नगरीय क्षेत्र की टिफिन सर्विस, रिक्शाचालन, फड़ कारोबार, घरेलू नौकर जैसी अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों से जुड़ते हैं। हालांकि, औपचारिक और अनौपचारिक सेवा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, फिर भी इन दोनों में गतिशीलता, शक्तियों, सुविधाओं के स्तर पर व्यापक अंतर भी रहते हैं।

भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में शक्तियों को विकेन्द्रीकृत कर नगरीय निकायों की व्यवस्था दी गयी है। इसके बावजूद नगरीय इलाकों में शक्ति का नियंत्रण अब भी शक्तिसंपन्न लोगों के पास ही देखा जाता है, क्योंकि स्थानीय राजनेता और राजनीतिक दल राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय दलों के इशारों पर ही काम करते हैं। निकायों में अकसर एक ही पार्षद बार–बार चुने जाते हैं, जो निहित स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं, जबकि आम आदमी को चुनाव प्रक्रिया में बेहतर स्थान नहीं मिल पाता। चुनावों में भारी मात्रा में धन खर्च किया जाता है, जो शक्ति और शासन के बीच गठजोड़ को जन्म देता है।

नगरीय अपराध नगरीय आर्थिकी का घटक बन गया है। शहरों में बुजुर्ग महिलाओं से चेन स्नैचिंग हिंसात्मक आचरण बन गया है। आपराधिक गतिविधियां, कानून–व्यवस्था की नाकामी, भ्रष्टाचार और निर्धनता अपराध के उत्पादक कारक हैं। शहरों में कई चिटफंड कंपनियां कुकुरमुत्तों की तरह उग आती हैं, जिनका संचालन संपन्न वर्ग करते हैं। इस तरह यह माना जा सकता है कि नगरीय क्षेत्रों में अपराध की बढ़ोतरी के निर्धनता के अलावा कई अन्य कारण भी हैं। परंपराओं के पुनरुत्थान की आवश्यकता नगरीय क्षेत्रों में ही महसूस की जाती है, गांवों में नहीं। इसी तरह दंगे नगरीय क्षेत्रों में ही होते हैं, गांवों में नहीं। ऐसे में निर्धनता, शक्ति और अपराधों के बीच संबंधों को समझने के लिये गहराई से अवलोकन की जरूरत महसूस होती है।

शहरीकरण की चुनौतियां (Challenges of Urbanization): विभिन्न कारकों के अलावा रोजगार और समृद्धि का वादा लोगों को शहरों की ओर जाने के लिये आकर्षित करता है। दुनिया की लगभग आधी आबादी शहरों में रहती है और वर्ष 2050 तक दो तिहाई जनसंख्या के शहरों की ओर चले जाने का अनुमान है। लेकिन, दुनिया के लगभग सभी नगर आज के दौर में गरीबी और पर्यावरणीय अपमानकों की समस्याओं से जूझ रहे हैं। लगातार बढ़ती आबादी से हवा–पानी की घटिया गुणवत्ता, पानी की कम उपलब्धता, कचरा निस्तारण का अभाव बढ़ रहा है। दुनियाभर के देशों में शहरों के फैलाव को देखते हुए इन सब समस्याओं के निस्तारण को मजबूत नगरीय नियोजन की जरूरत महसूस होती है।

खतरा (Threats)

1. शहरों का लगातार विकास गरीबी को बढ़ाने की बड़ी वजह बन सकता है, जिसके चलते स्थानीय शासन के लिये सभी लोगों को सेवाएं–सुविधाएं देना असंभव हो जायेगा
2. ऊर्जा का अत्यधिक और निरंतर उपयोग वायु प्रदूषण में बहुत अधिक बढ़ोतरी की वजह बनता है, जो मानव स्वास्थ्य पर बड़ा असर डालता है
3. वाहनों का धुआं शहरों में वायु प्रदूषण को बढ़ाता है
4. सफाई व्यवस्था का अभाव और अनिस्तारित कचरे के ढेर विभिन्न बीमारियों का कारण बनते हैं
5. नगरीय विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय नुकसान का खतरा बना रहता है
6. प्रदूषण और अन्य कारणों से शहरों में वनों को नुकसान हो रहा है, नये पौधे नहीं पनप पा रहे हैं
7. विषैले पदार्थों, बढ़ते वाहन, खाद्य शृंखला के अभाव से पशुओं की आबादी घट रही है

(https://www.nationalgeographic.com/environment/habitats/urban-threats/#close)

समाधान (Solutions)

1. रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के जरिये निर्धनता की रोकथाम
2. स्थानीय निकायों में स्थानीय समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देना

3. ऊर्जा उपयोग के तरीकों में नवोन्मेषण और परिवहन व्यवस्था के वैकल्पिक साधनों को बढ़ावा देकर वायु प्रदूषण पर रोकथाम
4. कचरा निस्तारण और आवास जैसी सेवाओं–सुविधाओं के लिये पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप यानी पीपीपी मोड को बढ़ावा देना
5. पौधरोपण को बढ़ावा देना और नगरों के हरित क्षेत्र के संरक्षण को नगरीय नियोजन का मूल तत्व बनाया जाना

8.7 अभ्यास प्रश्न (Model Questions)

1. बस्ती को परिभाषित कीजिये। नगरीय निर्धनता से आप क्या समझते हैं?
2. क्या आप मानते हैं कि नगरीय निर्धनता ही बस्तियों के बसने का मुख्य कारण है?
3. नगरीय शक्तियों और नगरीय शासन पर अपने विचार लिखें।
4. नगरीय अपराध के कारण क्या हैं?
5. शहरों में किस तरह के अपराध होते हैं ?

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

Knox, P. and Pinch, S. (2010). Urban Social Geography. 6th ed. New Delhi: Pearson.

Paddison, Ronanan. (2001). Handbook of Urban Studies. New Delhi: Sage Publications.

Spates, James L. and Macionis, John J. 1987. The Sociology of Cities. Belmont, Calif: Wadsworth Publishing Company.

United Nations Human Settlements Programme. (2003). The Challenge of Slums: Global report on Human Settlements, 2003. London: Earthscan Publicati